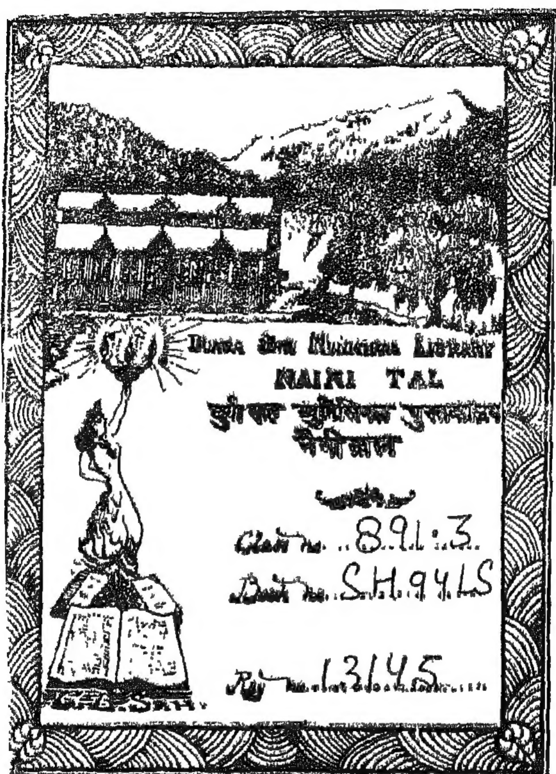

Durga Sah Municipal Library
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class no. 891.3
Book no. SH94LS
Reg no. 13145

तीन खून

टेबुल पर रक्खी हुई फाइल से सिर उठा साहब ने सामने खिड़की की ओर देखा। उनकी मुद्रा में बहुत बड़ी हैरानी और परेशानी भरी थी। शायद कुछ हलका होने के लिए सिग्रेट जलाया।

धुँआ निकलकर कमरे में फैलने लगा। वे अनिमेष दृष्टि से धुएँ को देखने लगे। नहीं, वे उधर देखते हुए भी नहीं देख रहे थे। उनकी आँखें तो फाइल की किसी लाल, पीली और हरी कोटियों मे घूम रही थीं।

धुँआ निकलता रहा, लेकिन उसके साथ उनकी परेशानी निकलती हुई नही प्रतीत होती थी। टेबुल पर रक्खी हुई घण्टी टनटनाई। बाहर से एक अर्दली आकर खड़ा हो गया। बोला—"हुकुम सरकार!"

"लाल और गुप्ता के बँगलों पर जाओ। बाहर से आए हों, तो कह देना साहब ने अभी बुलाया है।" साहब ने कहा।

"बहुत अच्छा हुजूर", कह अर्दली रवाना हो गया। साहब ने एक कश और लगाई और सिग्रेट राख-दान में डाल दाहिने हाथ की तर्जनी होंठों को लगा कर सोचने लगे।

लालजी ताँगे से उतरे। अपने मकान में हैट खूँटी पर रखने ही जा रहे थे कि पीछे से किसी ने पुकारा—"हुजूर!"

"कौन?" कह पीछे मुड़कर देखा। आगन्तुक ने झुककर सलाम किया।

"क्या है भाई? तुम्हे देख तो मैं डर जाया करता हूँ। कहो क्या बला ले आए?" लालजी व्यस्त-स्वर में बोले।

आगन्तुक ने सकपका कर कहा—"क्या कहूँ, अभी तो हुजूर आ ही रहे हैं?"

"कहो भी तो। हुजूर को शायद आराम नही लिखा है।"

"साहब ने आप और गुप्ता साहब को तुरन्त बुला लाने को कहा है।"

"क्या कोई नई बात है ?"

"हुजूर ने सुना नहीं ! तीन खून हो गए। कहा तो नहीं, लेकिन शायद इसी के सम्बन्ध में बुलाया होगा।"

"तीन खून।"

कुछ देर चुप रहकर कहा—"गुप्ताजी भी हमारे साथ ही आए हैं। तुम उन्हें लेकर आओ। मैं चलता हूँ।"

लालजी का नौकर भीतर से निकला तो वे जाने को मुड़ चुके थे। वह हैरान-सा उन्हें देखता रहा।

साहब के कमरे में पैर रख लालजी सलाम कर ही रहे थे कि गुप्ताजी भी आ गए। साहब ने पूछा—"कब आए ?"

लालजी ने कहा—"अभी आ ही रहा हूँ। गुप्ताजी भी हमारे साथ ही आ रहे हैं।"

"अभी कुछ जलपान भी नहीं किया है शायद, चाय मँगाऊँ।" साहब ने स्नेह-पूर्ण शब्दों में कहा।

अपने कप्तान साहब से उन्हें शिष्टाचार के ऐसे आग्रह का शायद यह पहला ही अवसर न था।

लालजी ने विनीत स्वर में कहा—"जी, नहीं। बताइए क्या आज्ञा है ?"

साहब बोले—"अच्छा बैठ जाओ। यह फाइल देख जाओ। बड़ी सनसनी के खून हैं। तीन खून हो गए। एक ही रात और शायद एक ही समय भी।"

वे बैठकर विस्मय से फाइल पढ़ने लगे।

फाइल का खुलासा यों था—

रामबाग मुहल्ले में तीन कोठियाँ हैं—लाल कोठी, पीली कोठी, हरी कोठी, तीनों एक दूसरे से मिली हुई और एक कतार में हैं।

लाल कोठी है डाक्टर बोस की, पीली कुँवर अजीतसिंह की, हरी मिस्टर जान की। इन्हीं तीनों का खून भी हुआ है।

डाक्टर बोस की मृत्यु गोली से हुई जान पड़ती है। सीने में गोली लगी है। किसी से उनकी कहा सुनी नहीं सुनी जाती। उनके कमरे और कोठी में प्रत्येक वस्तु ज्यों-की-त्यों है। कुछ भी टस-से-मस नहीं हुआ है। बारह बजे रात में

फायर की आवाज सुनाई पड़ी।

कुँवर अजीत सिंह की मृत्यु भी उसी समय, उसी तरह हुई जान पड़ती है। उनके मुँह पर गोली लगी है। ऐसा जबरदस्त फायर हुआ है कि उनका सारा चेहरा ही उड़ गया है—आँख, नाक, कान, कपोल, ललाट, सब गायब। उनके टुकड़े फर्श पर पड़े मिले। उसी रात उनकी मृत्यु के कुछ पहले ही श्रीमती अजीत शायद अपने मायके चली गईं। जाने के पूर्व उन लोगों में कुछ कहा-सुनी भी हुई थी। वहाँ भी सब कुछ ज्यों-का-त्यों था। मि० जान की मृत्यु कैसे हुई यह पता नहीं चलता। गले में सुई चुभाने का दाग-सा जान पड़ता है, लेकिन वह भी स्पष्ट नहीं। क्योंकि वैसे ही कितने ही तिल के भी निशान थे। वहाँ भी सब चीजें ज्यों-की-त्यों थीं।

वे अच्छी ही हालत में सोने गए। रात को न मालूम कब मर गए। ग्यारह बजे रात को वे घूमकर लौटे। जब वे शाम को निकलते, तो इसके पहले शायद ही कभी लौटते हों।

फाइल पढ़कर गुप्ता और लॉल ने साँस ली। उनके चेहरे पर अगाध सागर के प्रतीक उसे पार करने की इच्छा से खड़े हुए पथिक की निराशा छा गई।

साहब ने कहा—"कुछ अनुमान होता है ? किसी पर सन्देह करते हो ? मामला बहुत पेचीदा जान पड़ता है। एक ही व्यक्ति ने हत्या की है, या भिन्न-भिन्न व्यक्तियों ने; एक ही इरादे से या भिन्न-भिन्न इरादों से।"

"सन्देह तो श्रीमती बोस और श्रीमती अजीत दोनों पर किया जा सकता है, लेकिन जहाँ तक मैं सोचता हूँ यह सिर्फ खड़ा होने की एक जगह भर है। योंही यह भी कहा जा सकता है कि मिस्टर जान ने आत्महत्या कर ली हो, अथवा उनके हृदय की गति रुक गई हो। किसी कोठी में कोई चोरी नहीं हुई, तो यह स्पष्ट है कि तीनों हत्याएँ केवल हत्या करने के विचार से ही हुईं।" लाल ने कहा।

गुप्ता बोले—"श्रीमती अजीत को बुलवा लेना चाहिए था।"

साहब ने कहा—"उनके मायके तार भेजा गया था। लेकिन वे वहाँ भी नहीं हैं।"

"तब तो उन पर सन्देह करना अनुचित नहीं। यद्यपि भारतीय महिला के

लिए पति की हत्या करना असम्भव नहीं, तो दुष्कर, अतीव दुष्कर तो अवश्य ही है। गुप्ता ने कहा।

लाल बोले—"कुँवर साहब तो आपके मित्रों में थे।"

"जी हाँ, मुझे उनकी मृत्यु का बहुत शोक है। इतना मैं खूब जानता हूँ कि कुँवर साहब बड़े सज्जन, दयालु और शाहखर्च थे। जहाँ तक मैं जानता हूँ, उनमें कोई दोष नहीं था।" गुप्ता ने कहा।

साहब ने एक सिग्रेट जलाते हुए कहा—"इस मामले की जाँच रेगुलर पुलिस को न देकर, तुम्हीं लोगों को देना चाहता हूँ। पूरा इनाम रक्खा जायगा। इसके अलावा कामयाबी तुम लोगों का ओहदा भी बहुत आगे बढ़ा देगी।"

लाल ने कहा—"मैं समझता हूँ अलग-अलग सुराग लगाने से ज्यादा लाभ होगा। यों तो हम लोग आपस में परामर्श करते ही रहेंगे।"

"अच्छा, जाओ अब आराम करो मौके के थाने को खबर दे देना। कल हम भी मौके पर चलेंगे। आठ बजे सुबह वहाँ तैयार रहना।" साहब ने कहा।

लाल कोठी

० ० ० ० ० ० ०

आठ बजे सुबह लाल कोठी के सामने दारोगा खुफिया इन्स्पेटर मिस्टर लाल और गुप्ता साहब की प्रतीक्षा कर रहे थे। सारे मुहल्ले में श्मशान की निराशामयी नीरवता छायी हुई थी। प्रतिव्यक्ति आतंकित था।

लाल का पूरा नाम कुँवर बीरेन्द्र लाल था। संक्षेप में लोग मिस्टर लाल, या लालजी कहा करते थे। अभी वे बिल्कुल नवयुवक थे। गेहुँआ रंग, बढ़िया कद, कुछ दोहरा-सा स्वस्थ शरीर, बड़ी, आकर्षक आँखें और प्रभावपूर्ण आकृति थी। बड़े ही सुन्दर जवान थे। लेकिन इनकी आयु से कोई नहीं कह सकता था कि ये इतने नामी जासूस हैं। ऐसा लगता है मानो अभी युनिवर्सिटी से निकल कर आ रहे हैं।

मि० गुप्ता की आयु उनसे अधिक थी। उनमें और उनकी जासूसी ख्याति में अनुपयुक्त अनुपात न था। ये भी अच्छे जवान थे। परन्तु इनकी आकृति और मुद्रा में प्राकृतिक प्रभाव एवं आकर्षकता की अपेक्षा मानवी आतंक तथा दर्प भरे अधिकार की मात्रा कहीं अधिक थी। इनका पूरा नाम था मिस्टर गांगोली गुप्ता।

कार की आवाज हुई। सब लोग चौकन्ने हो गए। साहब आ गए। न जाने कितनी आतंकित, विस्मित एवं कुतूहल-पूर्ण आँखें झरोखों से, खिड़कियों से, झुरमुटों से पुलिस को देखने लगीं।

पहले लोग लाल कोठी में चले। सब सिपाही फाटक पर बन्दूक लेकर खड़े रहे, एक उनके साथ भीतर गया। कोठी तिमंजिली थी। नीचे की मंजिल में कार, ताँगे, टूटी-फूटी कुर्सियाँ, टेबुल, या कभी-कभा एकाध गाएँ रहा करतीं। नौकरों के रहने की कोठरियाँ नीचे ही थीं। बहुत से कमरे थे। भीतरी कमरों में पूरा

प्रकाश दिन को भी न रहता। उत्तर का एक कमरा जो सबसे अलग-सा था, बड़ा सुन्दर था। वही गेस्टरूम था।

हर एक कमरा, हर एक कोठरी, हर एक खिड़की, ताखा आदि अच्छी तरह देखे भाले। कोई काम की चीज न मिली।

फिर सब लोग सीढ़ी से ऊपर गए। दूसरी मंजिल पर तीन तरफ बरामदा और चौथी तरफ खुला हुआ बड़ा-सा आँगन था। उसमें बहुत से गमले थे जिनमें तरह-तरह के फूल लगे थे। पानी का नल और सुन्दर स्नानागार भी था।

आँगन से हो वे एक कमरे में गए। उसमें आलमारियों में बहुत-सी किताबें और कुछ औजार बन्द पड़े थे। किताबें सब डाक्टरी से ही सम्बन्ध रखती थीं। उसके बाद डाक्टर बोस के सोने का कमरा था। उसकी सजावट बड़ी अच्छी थी। इलेक्ट्रिक फैन लगा था। शीशों में मढ़े अच्छे चित्र दीवारों पर टँगे थे। फर्श पर अच्छी कालीन पड़ी थी। कुछ टेबुल अच्छे कपड़ों से ढके पड़े थे। किसी पर कंघी, शीशा, इत्र, क्रीम, स्नो, पाउडर, रेफ्टीरेजर, किसी पर सिग्रेट के डिब्बे, सलाई और किसी पर कुछ शीशियाँ और कुछ किताबें षड्यंत्र और जासूसी की रखी थीं। जितने टेबुल थे, उन्हीं के सामने उतनी ही कुर्सियाँ भी थीं। एक कोने को दीवार में ही एक रैक था। बीच में एक सुन्दर पलँग सजा सजाया पड़ा था। ऊँचे कोमल गद्दे पर सफेद फर्द पड़ा था जो रक्तरंजित था।

यह सब तो था, लेकिन सबसे अनूठी बात उस कमरे की छत में थी। उसमें सैकड़ों बिजली के-से छोटे-छोटे बल्ब लगे थे। वे बल्ब, शीशे के न थे, लेकिन बिल्कुल शीशे जैसे थे। सब बल्ब सफेद थे, बीच का हरा था। सब बल्ब ज्यों-के-त्यों थे, बीच का हरा बल्ब हत्या वाली रात को फूट गया था। ऐसी छत उन लोगों ने कहीं न देखी थी।

लेकिन यह जो हरा बल्ब फूट गया था, इससे हत्या से क्या सम्बन्ध हो सकता था। इसमें अपना सिर खपाना शायद किसी ने ठीक न समझा। बात यह थी कि जिस फायर से डाक्टर बोस की हत्या हुई, वह किसी भी तरह उस बल्ब में नहीं लग सकता था। हाँ, ऐसा तो तब हो सकता था, जब फायर करने वाला पलँग के नीचे से फायर करता और वह उनकी पीठ को छेदता हुआ छाती से निकल कर ऊपर फर्श में उस हरे बल्ब में जा लगता। लेकिन यह सोचना तो

बिल्कुल मूर्खता थी।

श्रीमती बोस का कमरा इसके पास ही था। दोनों कमरों के बीच में एक दरवाजा था। उस पर एक चिक भी थी। श्रीमती बोस और उनकी एक मात्र सन्तान दस-बारह वर्ष की बालिका बहुत दुखी थीं। साहब तथा जासूसों ने उनसे कुछ पूछना चाहा। दरवाजे पर चिक लटकाया गया। वह अपनी बालिका को लिए चिक के भीतर बैठ गईं।

लाल ने कहा—"देवीजी, आपसे हम कुछ पूछना चाहते हैं। कृपया, हमारे प्रश्नों का सही-सही उत्तर दीजिएगा, ताकि हम लोग सही-सही पता लगा सकें।

"आप जिस कमरे में हैं, क्या उसी में हमेशा सोती हैं?"

श्रीमती बोस—"जी हाँ।"

लाल—"उस रात आप वहीं सोई थीं?"

श्री०—"जी हाँ।"

लाल—"डाक्टर साहब उस रात बाहर से घूमकर कब आए?"

श्री०—"करीब ग्यारह बजे।"

ला०—"तब आप उनके पास गई थीं?"

श्री०—"जी हाँ।"

ला०—"कितनी देर वहाँ रहीं?"

श्री०—"एक प्याला चाय पिला कर चली आई थी।"

ला०—"आपका कोई नौकर-चाकर उस समय ऊपर आया था?"

श्री०—"छोटा-सा लड़का निद्धू है, वही आया था।"

ला०—"किसलिए?"

श्री०—"वह नित्य आया करता है। वह हमसे पूछकर सोने जाता है।"

ला०—"वह आपके चाय पिलाकर अपने कमरे में लौट आने पर आया था या पहले ही?"

श्री०—"लौट आने पर।"

ला०—"कितनी देर बाद?"

श्री०—"तुरन्त ही।"

ला०—"आपमें और उनमें उस रात कोई कहा-सुनी हुई थी क्या।"

श्री०—"क्या पूछते है साहब ? हमारी कहा-सुनी से उनके खून का क्या मतलब ?"

ला०—"आप नाराज न हों देवी जी ! कितने ही प्रश्न जो आपको व्यर्थ लगते होंगे, कुछ न कुछ अर्थ रखते हैं। यह न समझिए कि आपके दुःख से हमको कोई दुःख नही। पुलिस में है तो क्या, हमारे भी हृदय है।"

श्री०—"अच्छा पूछिए।"

ला०—"सोने के पहले सब दरवाजे बन्द थे ?"

श्री०—"मैंने ही बन्द किये थे।"

ला०—"किसी पर आपका सन्देह है ? नौकर-चाकर या अड़ोस-पड़ोस के किसी आदमी पर ?"

श्री०—"किसी पर नहीं।"

ला०—"फायर की आवाज सुनकर ही आप उठीं।"

श्री०—"जी हाँ, उठकर गई तो देखा वे···।"

इतना कहते-कहते रुलाई आ गई।

ला०—"समझ गया। आप दिल को कड़ा किए रहें। जो होना था, वह हो गया। उसमें किसी का वश नहीं। सब नौकर भी तभी आये ?

श्री०—"जी हाँ।"

ला०—"वह निद्धू भी।"

श्री—"जी हाँ सब।"

ला०—"यह हरा बल्ब कब फूटा ?"

श्री०—"कह नहीं सकती। सुबह देखा तो कुछ हरे-हरे टुकड़े फर्श पर पड़े थे। तब ऊपर ध्यान गया।"

ला०—"इसके पहले बल्व को कब देखा था आपने ?

श्री०—"मेरी दृष्टि तो उसी रात शाम को सात बजे उस पर पड़ी थी। कमरे में गई और उनकी चारपाई पर लेट कर एक किताब देखने लगी। तभी देखा था।"

कुछ विस्मित हो लाल ने कहा—"ठीक याद है आपको, फिर ध्यान कर लीजिए।"

श्री०—"खूब याद है, फिर ध्यान कर लिया।"

लाल कुछ देर तक चुप हो सोचते-से रहे। लेकिन यहाँ उनके इस तरह सोचने से साहब को तो क्या, गुप्ता को भी कोई तथ्य न प्रतीत हुआ।

बल्ब के जो हरे-हरे टुकड़े गिरे थे, उन्हें दरोगा जी से माँग कर वे देखने लगे। फूटा हुआ बल्ब अभी कुछ छत में भी था।

लाल ने साहब से कहा—"फूटे हुए बल्ब को मैं छत में निकट से देखना चाहता हूँ।"

साहब ने कुछ अनिच्छा से कहा—"देख लो, चाहते हो तो।"

गुप्ता को तो यह बिल्कुल व्यर्थ लगा। लाल ने सीढ़ी मँगवाई और ऊपर चढ़ गए। बड़े ध्यान से कुछ देर तक देखते रहे, फिर नीचे उतर आए। फिर पूछा—"कोई चीज चोरी तो नहीं गई है न ? सेफ वगैरा सब कुछ देख लिया है न ?"

श्री०—"कुछ भी नहीं।"

ला०—"गहने कपड़े सब देख लिए हैं ?"

श्री०—"जी हाँ, सब।"

ला०—"आप लोग प्रकाश मे सोते रहे, या प्रकाश बुझाकर ?"

श्री०—"बुझाकर।"

ला०—"दरवाजे बन्द कर प्रकाश बुझाया था ? डाक्टर साहब के कमरे का प्र ाश किसने बुझाया ?"

श्री०—"दरवाजे बन्द कर प्रकाश बुझाया था। उनके कमरे का प्रकाश भी मैने ही बुझाया।"

ला०—"डाक्टर साहब कुछ शराब वगैरह भी···।"

श्री०—"मेरी जानकारी में वे शराब नहीं पीते थे। एक बार दवा के रूप में थोड़ी पीते रहे।"

ला०—"उस रात जब आप उठीं तो क्या पीली कोठी में भी फायर की आवाज़ सुनी। यदि सुनी तो साथ, पहले अथवा पीछे ?"

श्री०—"मैंने सुनी ही नहीं।"

ला०—"डाक्टर साहब के मित्र उनसे मिलने आते-जाते थे।"

श्री०—"यहाँ कोई नही आता था। मिलने का कमरा नीचे है।"

ला०—"उनके मित्रों को आप पहचान सकती हैं ?"

श्री०—"दो तीन को जो हमारे सम्बन्धी होते हैं।"

ला०—"उनके नाम ?"

श्री०—"उमेशचन्द, विनोद शंकर और सुरेश। वे पटना और बिहार के रहने वाले हैं।"

ला०—"क्या हम आपका कमरा देख सकते हैं ?"

श्री०—"देख लीजिए।"

ला०—"आप उस कमरे में चली जायँ।"

उनके पास वाले कमरे में चले जाने पर वे उनके कमरे में गए। बड़ा सुन्दर कमरा था। साज शृंगार में उस कमरे से भी अच्छा था। दीवार पर एक पिस्तौल रक्खा था। लाल ने पूछा—"यह भरा है, या खाली।"

श्री०—"खाली है।"

ला०—"इसकी गोलियाँ ?"

श्री०—"आलमारी में हैं।"

ला०—"उस रात जब फायर की आवाज हुई, तो आप पिस्तौल लेकर उस कमरे में गईं या खाली हाथ ?"

श्री०—"खाली हाथ।"

ला०—"यह हमेशा यहीं रहती है ?"

श्री०—"जी हाँ। कभी-कभी बाहर जाते वक्त वे साथ ले जाया करते थे।"

ला०—"आखिरी बार वे कब साथ ले गए थे ?"

श्री०—"एक महीना हुआ, जब गाजीपुर गए थे।"

ला०—"अपनी छोटी बच्ची को मेरे पास भेज दें।"

वह माँ के कहने पर सकुचाती और डरती हुई आँखों में आँसू भरे आ गई। बड़ी सुन्दर लड़की थी। लाल ने उसे बड़े प्यार से गोद में उठाकर पूछा—"बच्ची, तुमने किसी को देखा था ?"

उसकी आँखों के आँसू नीचे गिरने लगे। रूमाल से पोंछते हुए लाल ने सान्त्वना के भाव से कहा—"बच्ची तुम रोओ मत। तुमको कोई दुःख न होने पाएगा।"

उसे दस रुपये का नोट देने लगे। लड़की नहीं ले रही थी। परन्तु वे उसे लेने को बाध्य करने लगे। वह लाल का मुख देखने लगी, मानो कोई परिचित वात्सल्य उससे कह रहा हो—"ले लो बिटिया।"

श्रीमती बोस से लाल ने संवेदना के भाव से कहा—"देवीजी, आपका जो रत्न लुट गया, वह तो हम नहीं दे सकते; पर मानव संवेदना से जो कुछ मिल सकता है वह सदैव आपका है। हम आपके किसी काम आ सकें, तो अपना सौभाग्य समझेंगे। इस मकान में आपको कोई भय लगे तो···।"

उन्होंने विरक्त स्वर मे कहा—"मुझे अब किस बात का भय रहा। अपने प्राणों का भय नहीं, चिन्ता इसी बच्ची की है।"

लाल ने आश्वासन भरे स्वर में कहा—"उसकी भी चिन्ता आप न करें। दो कांस्टेबुल यहाँ रात को पहरा दिया करेंगे। हाँ, मैं अबकी बार आऊँगा, तो आप मुझे अपने तथा डाक्टर साहब के नाम से आई हुई चिट्ठियाँ जिनसे में कुछ सुराग लगा सकूँ, देने की कृपा कीजिएगा।"

फिर सभी कमरों को देखभाल कर नीचे आए। नौकरों से पूछ-ताछ की। कोई वैसी बात न मिली। निद्धू से भी बहुत-कुछ पूछा। वह एकाध बात का जवाब देता था, नहीं तो बस रोने लगता था।

पुलिस निराशा और खिन्न-सी लौट रही थी। गुप्ता ने यों कह शांति भंग की, "क्यों मिस्टर लाल, आपने तो श्रीमती को पूरी देवी मान लिया। लेकिन शायद राक्षसियाँ भी इन्हीं देवियों में ही होती हैं। हम लोगों के ट्रेनिंग कोर्स में स्त्री-चरित्र की ट्रेनिंग भी आवश्यक है।"

"सब बातें ट्रेनिंग में ही नहीं सीख सकते हम लोग। स्त्री चरित्र के साथ मनोविज्ञान और मानवता का रहस्य भी जानना हमें उतना ही आवश्यक है।" लाल ने कहा।

मिस्टर जानसन मित्र जासूसों की बातें सुन कर मुस्करा रहे थे।

पीली कोठी

० ० ० ० ० ० ०

श्रीमती अजीत का नाम था प्रेमलता। अभी उनको कुँवर साहब की हत्या का पता नहीं था, शायद पता होता तो अब तक यहाँ आ गई होतीं। उनके मायके तो खबर भेज दी गई थी। शायद वहाँ नहीं हों और वहाँ होकर न आना, यह तो बड़ा ही अवांछनीय और सन्देहजनक है। ऐसा संभव भी नहीं प्रतीत होता। लेकिन कौन जाने ?

आज पुलिस पीली कोठी की जाँच कर रही थी। यह कोठी उससे भी सुन्दर थी। कुँवर साहब का कमरा बड़े ठाट का था। फर्श पर कालीन के ऊपर बड़ा सुन्दर फर्द पड़ा था। उनके पलँग की सजावट का तो कुछ कहना ही नहीं। हाथी दाँत का पलँग मोटा मखमली गद्दा और उस पर बूटेदार चाँदनी लटक रही थी। दीवारों पर सुनहरे फ्रेमों और शीशों में मढ़े हुए सुन्दर-सुन्दर चित्र टँगे थे। चित्रों से उनकी श्रृंगारप्रियता, कलाप्रियता, प्रेम, भक्ति तथा वीरता की प्रवृत्ति और अभिरुचि का पता चलता था। बारहसिंगों की सींगें और बाघम्बर भी भित्तियों तथा कमरे के सौंदर्य और विशालता को अत्यधिक समृद्ध कर रहे थे। पियानो, हारमोनियम तथा बेला आदि बाजे भी रखे थे। कुँवर साहब संगीत प्रेमी भी थे।

दीवारों पर वैधानिक, भौगोलिक नक्शे भी लटक रहे थे। एक टेबुल पर एक ग्लोब भी रक्खा था। कविता, उपन्यास तथा गीता की पुस्तकें भी रक्खी थीं। उनमें कागज डाले हुए थे। इससे सूचना मिलती थी कि वे उनका अध्ययन किया करते थे। दीवारों पर बहुत-सी तलवारें, रिवाल्वर और राइफल भी लटक रही थीं और बहुत-सी चीजें थीं।

कुछ ऐसा ही प्रेमलता का भी कमरा था। लेकिन उसमें श्रृंगार की सामग्रियाँ कुछ अधिक थीं। दोनों कमरों में दो लिफ्टिंग चेयर भी थीं जो नीचे

दबा देने पर एक-दूसरे कमरे में चली जाती थीं।

कुँवर साहब के कमरे में दो दरवाजे और आठ खिड़कियाँ थीं। एक खिड़की और खिड़कियों से नीची थी। वह खिड़की उनके पलँग की पांयत की ओर थी। ऊँची खिड़कियों से बाहर से ऐसा फायर हो ही नहीं सकता था, जो कुँवर साहब के चेहरे पर सामने से लगता और फायर सामने से ही हुआ था, क्योंकि उसी तरफ की दीवार की ओर विकृत माँस और हड्डियों के टुकड़े पड़े थे और उसी दीवार में गोली भी टकराई थी।

कुँवर साहब की हत्या करने वाला फायर इसी निचली खिड़की से हो सकता था। लेकिन उसी हालत में जब वे किसी ऊँचे तकिये पर सिर और गर्दन ऊपर को समेटे अँगड़ाई लेते हुए से चित्त लेटे रहे हों, गोली ठोड़ी के नीचे कण्ठ के ऊपर लगी थी।

हरएक कमरा, हरएक स्थान, नीचे का मोटर खाना, गाड़ीखाना सब कुछ देखभाल कर नौकरों से पूछताछ शुरू हुई।

लाल—"क्या उस रात कुँवर साहब और रानी साहब से कुछ कहा-सुनी हुई थी?"

नौकर—"हाँ सरकार, कुछ गरम-गरम बातें हो रही थीं।"

ला०—"क्या बातें हो रही थीं?"

नौ०—"यह नहीं कह सकता।"

ला०—"क्यों?"

नौ०—"हम लोग मालिक और मालकिन के झगड़े नहीं सुना करते।"

ला०—"तब कैसे जाना कि झगड़ा हो रहा था?"

नौ०—"ऐसे ही सुन लिया कि कुछ कहा-सुनी हो रही है। लेकिन यह नहीं सुना कि क्या? और ऐसा तो उन लोगों में हुआ ही करता था।"

ला०—"क्या हुआ करता था?"

नौ०—"यही वाद-विवाद।"

ला०—"दो-एक शब्द तो बतलाओ?"

नौ०—"न जाने क्या—क्षत्राणी, सुन्दरी, वीर········ यही सब।"

ला०—"तुम लोगों के साथ उनका कैसा व्यवहार था?"

नौ०—"बड़ा अच्छा सरकार।"

ला०—"कौन अधिक मानता, कौन अधिक डाँटता ?"

नौ०—"जैसे माँ-बाप, यही समझ लीजिए।"

लाल ने मिस्टर जानसन की ओर देखा, शायद यह संकेत करने के लिए कि ये कैसे निर्भीक और बेलाग है। साहब ने थोड़ा मुस्करा दिया। वे फिर पूछने लगे—

"रानी साहिबा कब गईं ?"

नौ०—"दस बजे के करीब।"

ला०—"कैसे ?"

नौ०—"अपनी कार से।"

ला०—"उनके साथ, कौन ड्राइवर था ?"

नौ०—"अपनी बाँदी के साथ। उनका अलग ड्राइवर है, कुँवर साहब का अलग।"

ला०—"कुँवर साहब नीचे आए थे, जब वे कार पर चढ़ रही थीं ?"

नौ०—"जी नहीं।"

ला०—"वे अपने साथ कोई हथियार ले गईं ?"

नौ०—"उस दिन तो नहीं देखा। लेकिन सरकार क्या कोई क्षत्राणी भला बिना शस्तर लिये कहीं जाती है। हमारी मालकिन ऐसी-वैसी ठकुरानी तो हैं नहीं। वे क्षत्राणी हैं।"

लाल जी को रोमांच हो आया। शायद बीते दिनों की वीर क्षत्राणियों की वीर गाथाएँ सिनेमा के फिल्म-सी उनकी आँखों के सामने नाच उठीं। फिर पूछना शुरू किया—

"क्या कुँवर साहब अपनी चारपाई पर हमेशा कोई शस्त्र रखकर सोया करते थे ?"

नौ०—"जी हाँ, अक्सर।"

एक रायफिल उनके सिरहाने उस रात भी रक्खी थी। लेकिन वह भरी-भराई पड़ी थी। गुप्ता जी ने कुछ आलोकित हो अंग्रेजी में कहा—"आत्महत्या की सम्भावना भी कम नहीं हो सकती।"

लाल जी ने कहा,"हम लोग इस पर विचार करेंगे।" मि० जानसन ने कुछ

न कहा। उन्होंने फिर पूछना शुरू किया—

"कौन-कौन से लोग कुँवर साहब से मिलने आया करते थे ?"

नौ०—"यों तो कितने थे, लेकिन उनके एक घनिष्ठ मित्र बहुधा आया करते थे। वे बिना पूछ-ताछ ऊपर चले जाया करते थे।"

ला०—"क्या नाम था उनका ?"

नौ०—"दिवाकर जी।"

ला०—"कैसे हैं, कहाँ के रहने वाले हैं ?"

नौ०—"उनका रंग-रूप बिल्कुल कुँवर साहब का-सा है। शायद अलीगढ़ के रहने वाले हैं।"

उसने हाथ जोड़कर कहा—"सरकार भी (लालजी) वैसे ही हैं।" वे कुछ मुस्कुरा उठे और फिर पूछा—

"उस रात वे थे ?"

नौ०—"नहीं सरकार। वे होते तो भाग क्यों जाते ?"

लाल ने अंग्रेजी में गुप्ता से पूछा—"आप जानते होंगे उन्हें।" उन्होंने कहा—"नहीं मैं नहीं जानता। मुझसे और राजा साहब से बहुधा अकेले ही भेंट हुआ करती थी। ऐसे ही कभी कोई रहता भी तो लेकिन मेरे आते ही वह हट जाता था। उन महाशय को मैंने कभी नहीं देखा।"

लाल फिर पूछने लगे—

"दस बजे के बाद उस रात फिर किसी को नहीं देखा ?"

नौ०—"नहीं सरकार। हमारे मालिक ने हम लोगों को इनाम दिया था। उस रात हम सब नौकरों का भोजन एक साथ बना था। एक साथ खाया और एक ही जगह सोए। मालिक ने छुट्टी दे दी थी। मालिक भी दस बजे के पहले ही भोजन से निवृत्त हो गए थे।"

ला०—"तुम लोगों ने यह जानने की कोशिश नहीं की कि इतनी रात को रानी साहब क्यों और कहाँ जा रही हैं ?"

नौ०—"यह तो जाना कि मालकिन मायके जा रही हैं, लेकिन यह नहीं कि क्यों ?"

ला०—"किसने बताया ?"

नौ०—"बाँदी ने मोटर में बैठते समय धीरे से कहा—"मालकिन मायके जा रही हैं, यहाँ खबरदारी रखना।"

ला०—"बाँदी को तुम्हारी मालकिन बहुत मानती हैं? वह तुम पर रोब जमाती है?"

नौ०—"मानती बहुत हैं सरकार लेकिन उनकी आज्ञा है कि खबरदार जो मेरे नौकरों को तंग करोगी।"

ला०—"तुम्हारी मालकिन के मित्र भी तो आते-जाते रहे होंगे।"

नौ०—"कभी-कभी कुछ बड़े घर की औरतें आया करतीं, लेकिन हम उन्हें नहीं जानते।"

ला०—"वे भी जाया करती थीं उनके यहाँ?"

नौ०—"जाती रही होंगी सरकार पर यह सब बाँदी जाने।"

ला०—"और कोई मर्द भी आया करता था?"

नौकर कुछ तमतमा उठा। बोला—"यह सब सरकार को न पूछना चाहिए। हमारी मालकिन······।"

लाल उसकी बातों पर क्रुद्ध न हुए। आश्वासन के शब्दों में बोले—"मैं तुम्हारी मालकिन का अपमान करने वाली बात नहीं कहता। मेरा मतलब था किसी धूर्त कपटी, चोर से। अच्छा उस रात लाल कोठी में भी कोई फायर की आवाज सुनी तुम लोगों ने।"

नौ०—"नहीं।"

ला०—"कोई चीज भी चोरी गई है?"

नौ०—"देखी हुई चीज तो कुछ भी नहीं।"

ला०—"किसी पर कुछ सन्देह है?"

नौ०—"किस पर सदेह करें सरकार! हमारे सरकार किसी के बैरी न थे।"

सब पूछ-ताछ कर जब वे लोग चलने को हुए, त्योंही एक कार कोठी की बरसाती में आकर खड़ी हो गई। चौदह वर्ष की अतीव सुन्दर नव तरुणी कार से उतरी और कोठी पर चढ़ने लगी। उसके गुँथे हुए बाल साड़ी के ऊपर से पीठ पर लटक रहे थे। हाथ में एक सूटकेस था।

तरुणी की दृष्टि पहले-पहल लालजी पर पड़ी और उनकी उस पर। उस

क्षण भर के चक्षु-मिलन में जीवन का एक निस्पन्दन हो गया हो, तो आश्चर्य ही क्या ?

नव युवती की दृष्टि फिर समुदाय पर पड़ी। किसी ओर से कुछ क्षण तक कोई प्रश्न न हो सका। लालजी अग्रसर हुए। आगे बढ़कर शिष्टतापूर्वक पूछा—"देवी जी, आप कहाँ से पधार रहीं हैं ?"

हलकी-सी, बहुत हलकी-सी मुस्कराहट से भरे विस्मय के सरल स्वर में तरुणी ने कहा—"आप लोग पुलिस के हैं। यहाँ क्या··· ?"

लाल की मुद्रा मलिन हो गई। बोले—"आपका कौन-सा सम्बन्ध इस परिवार से है।" वे समझ गए कि आगन्तुक यहाँ की दुर्घटना से अनभिज्ञ है।

उसने कहा—"क्यों, बात क्या है ?"

तब तक नौकर आ गए और झुककर सलाम किया। उनकी आँखों में आँसू आ गए। तरुणी ने उद्विग्न हो पूछा—"क्यों राजमल, क्या बात है ? बहन अच्छी तरह तो हैं ? बहनोई साहब कैसे हैं ?"

राजमल सिसकने लगा। तरुणी की छाती धड़क उठी; आकृति विवर्ण हो गई। लाल ने मि० जानसन तथा अपने अन्य साथियों को रवाना कर तरुणी से आश्वासन-भरे स्वर में कहा—"देवीजी, इस समय आपको बड़ा ही अशुभ संवाद सुनना पड़ेगा। हृदय पाषाण करना पड़ेगा।"

उन्होंने संक्षेप में सब कुछ कह सुनाया। प्रभात होते ही कोमल-कमल-कलिका पर कठोर कर का स्पर्श हो गया।

8272

हरी कोठी

० ० ० ० ० ०

मि० जान की लोहे का एक बहुत बड़ी फर्म थी। वे लाखों की संपत्ति के स्वामी थे। लेकिन न अभी उन्होंने अपना ब्याह किया था और न उनके कोई संतान ही थी।

आज पुलिस की जाँच उनकी हरी कोठी में हो रही थी। इस कोठी की सजावट विलायती ढंग की थी।

इस समय पुलिस मिस मोरियो से बातें कर रही थी। मिस मोरियो का कहना था—"मि० जान से उनका प्रणय चल रहा था। वह पूरा हो गया था। आगामी क्रिसमस में उनसे उनका ब्याह होने वाला था। मि० जान ने उनके नाम से एक हिब्बा नामा लिख दिया था—"मेरी और मिस मोरियो की शादी आगामी क्रिसमस में होगी। उस हालत में वे मेरे साथ मेरी समग्र सम्पत्ति की स्वामिनी होंगी। शादी होने के पश्चात् यदि वे किसी दूसरे से शादी कर लेंगी, तो इस सम्पत्ति से उनसे कोई प्रयोजन न होगा और यदि मैं अपना दूसरा विवाह कर लूँगा तो आधी सम्पत्ति मिस मोरियो की होगी। यदि संयोग वश आगामी क्रिसमस के पहले ही मेरी मृत्यु हो जाय, तो मेरी सारी सम्पत्ति मिस मोरियो की होगी। मेरा दूसरा कोई उत्तराधिकारी नहीं है······।"

मिस मोरियो ने अपने कथन के समर्थन में यही लिखित प्रमाण-पत्र दिखलाया और कहा—"मि० जान की सारी सम्पत्ति पर मेरा अधिकार होना चाहिए। उस पर से पुलिस का ताला और पहरा हट जाना चाहिए। हाँ, वे चीजें जिनसे पुलिस समझती है, कि उसके सुराग में सहायता मिलेगी, चाहे जिस तरह अपने अधिकार मे रक्खे। अपने जिस अमूल्य धन को मैंने मि० जान के रूप मे खो दिया है, उसे इस संसार में अब नहीं पा सकती। वे क्या चाहते थे, जीवन मे उनका क्या लक्ष्य था, इसे मै ही जानती हूँ। अब मेरा कर्त्तव्य यही

है कि उनकी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति करूँ, जिससे उनकी आत्मा को शान्ति और सन्तोष मिले। ऐसा करने से मुझे भी शान्ति मिलेगी। आशा है आप लोग ऐसी कृपा कर मेरे क्लेश को कुछ हलका करने में मेरी सहायता करेंगे।"

इतना कहते-कहते मिस मोरियो के नेत्र सजल हो गए। लाल ने उसकी ओर ध्यान से देखा और आश्वासनपूर्ण शब्दों में कहा—"हम समझते हैं आप को कितना बड़ा क्लेश है। लेकिन इसमें अपना वश ही क्या ? दुःख में धैर्य ही काम देता है। हम यही चाहते हैं; और इसके लिए जगदीश्वर से प्रार्थना करते हैं कि मि० जान की आत्मा को शांति मिले और आपको उनकी विरह-व्यथा सहने की शक्ति मिले।"

"हाँ जो बात आपने सम्पत्ति के विषय में कही, उसके प्रति हमें इतना ही कहना है कि कभी-कभी वैधानिक बन्धन हमें कुछ ऐसा करने के लिए बाध्य कर देते हैं जो कुछ सीमा और समय तक अवांछनीय प्रतीत होता है।"

"यह प्रमाण-पत्र आपका है ही। हमें आपका विश्वास भी है। लेकिन मि० जान तथा आपकी सम्पत्ति पर पुलिस के इस अस्थायी अधिकार से आप किसी भी हानि की आशंका न करें। इस समय हमारा और आपका यही कर्त्तव्य है कि इस सम्पत्ति की रक्षा करते हुए हत्यारे का सुराग लगाएँ। जो हो गया, वह तो लौटने का नहीं, यह सोचकर निश्चेष्ट हो जाना व्यष्टि, समष्टि तथा राष्ट्र, नीति, विधान सबके लिए हानिकर है।"

मिस मोरियो ने तत्परता के भाव से कहा—"मैं निश्चेष्ट कैसे हो जाऊँगी ? आप लोग लाचार हो बैठ जाएँ, आपको सन्तोष हो जाए, किन्तु जिसने अपना ऐसा धन खो दिया हो, उसे कैसे सन्तोष होगा ? प्रतिशोध की भावना तो मनुष्य में होती ही है। हत्यारे का पता लग जाए तो मेरी आत्मा को कुछ शान्ति शायद मिल जाए।"

लाल ने कहा—"हम लोग एक न उठा रक्खेंगे। आप इसका पूरा विश्वास कीजिएगा। अच्छा, अब आप कृपया मेरे प्रश्नों का उत्तर दें और उसके उपरान्त उन स्थानों को दिखलाइये जहाँ आप और मि० जान बहुधा घूमने जाया करते थे। उस रात आप उनके साथ कब तक और कहाँ रहीं ?"

मिस मोरियो—"हम लोग क्लब गए थे। वहाँ से लगभग दस बजे लौटे।"

लाल—"वहाँ उनकी तबियत पूरी-पूरी ठीक थी?"

मि०—"जी हाँ।"

ला०—"आप तो दस बजे के बाद अपने घर चली गईं थी न?"

मि०—"जी हाँ, उन्हें कार से यहाँ उतार अपने घर चली गई थी।"

ला०—"रात को भी कभी-कभी आप यहाँ सोया करतीं थीं?"

मि०—"जी हाँ।"

ला०—"यहाँ की सभी चीजों को आप जानती हैं कि कहाँ, क्या और कितना है?"

मि०—"बहुत-सी चीजों को जानती हूँ। हाँ, यह नहीं कह सकती कि किस जगह उनका कितना धन है। उनके रहते हमें रुपये-पैसे की न कोई चिन्ता थी और न उनके प्रबन्ध में ही मैं हस्तक्षेप करती थी। वे बहुत चाहते थे कि मैं उनके रहते सब कामों में हाथ बँटाया करूँ, लेकिन इस पर मैंने कोई ध्यान नहीं दिया। अब देखती हूँ कि सब कुछ अपने ही सिर घहराया है।"

ला०—"क्या कीजिएगा? दुनिया का कुछ ऐसा ही रंग-ढंग है! अच्छा, क्लब में तो आप लोग बराबर जाया करते थे।"

मि०—"जी हाँ।"

ला०—"आपको किसी पर सन्देह है? अपने तथा जान साहब के किसी दुश्मन को बता सकती हैं?"

मि०—"ऐसा कोई शत्रु तो मैं नहीं जानती। यों तो शत्रु-मित्र सबके होते हैं।"

ला०—"किसी और महिला से भी उनका प्रणय था?"

मि०—"जी नहीं, यों तो मित्र-भाव बहुतों से था। आप जानते हैं हमारे समाज में स्त्री-पुरुष मिल-जुल सकते हैं, बातचीत कर सकते हैं।"

ला०—"मेरा ख्याल है मि० जान पूरे स्वस्थ थे।"

मि०—"जी हाँ, बिल्कुल नवजवान थे। लेकिन हाँ, कभी-कभी मुझसे कहा करते—'मेरे कलेजे की धड़कन कभी-कभी बढ़ जाती है।" मैं कहती—'यह तो बहुत बुरा है। इसकी दवा होनी चाहिए। चलो किसी डाक्टर को दिखाया

जाए।' वे हँसकर कहने लगते—'क्या मैं रोगी हूँ ? अरे ऐसे ही हो जाता है।' मैंने बहुत कहा, लेकिन कुछ ध्यान नहीं दिया। ध्यान देते भी क्या, बिल्कुल स्वस्थ थे। चेहरे पर खून दौड़ रहा था।"

ला०—"क्या आयु रही होगी उनकी ?"

मि०—"मुझसे कुछ अधिक—पच्चीस के लगभग। मेरा यह सत्रहवाँ वर्ष चल रहा है।"

प्रेमलता

०००००

मि० गुप्ता ने अपने बँगले में मि० लाल के साथ चाय पी और सिग्रेट जला एक लम्बी साँस लेकर कहा—"भई, कहीं से कुछ पता नहीं चलता। न कहीं चोरी हुई न किसी से शत्रुता है। लेकिन शत्रुता न होती, तो ऐसा करता कौन ? कुछ कारण तो अवश्य होगा। शायद शत्रु को कोई जानता ही न हो। या ऐसा साधारण शत्रु हो कि उस पर कोई सन्देह ही न कर सकता हो। ऐसे भी नर-पिशाच संसार में भरे पड़े हैं, जो सहज बातों में भी प्राणों के भूखे हो जाते हैं।"

मिस्टर लाल ने सिग्रेट का धुँआँ आकाश में छोड़ते हुए कहा—"क्या बताऊँ इतना सुराग लगाया, कुछ पता न चला। ऐसे केस कभी सामने नहीं आए थे। कहीं पैर रखने की जगह नहीं, जरा-सी देह हिलाने की गुंजायश नहीं। जिन पर हम लोग सन्देह कर रहे हैं, वे कदाचित् ही अपराधी हों।"

मि० गुप्ता बोले—"देखो लाल, एक काम करो। एकाध की जाँच तुम करो, एकाध की मैं। इस तरह बोझ हलका हो जायगा और काम भी अच्छा होगा। आओ साहब से तय कर लें।"

लाल—"अरे यार, साहब से क्या तय करना है ? तुम जिस केस को चाहो उसी का सुराग लगाओ।"

गुप्ता—"तुम चाहते हो तो पूरा पुरस्कार लेना। लेकिन भई, मुझे छोड़ना मत। लेकिन पुरस्कार की क्या बात है, हमें तो अपना कर्त्तव्य करना चाहिए, जिसमें राज्य में व्यवस्था और शान्ति स्थिर रह सके।"

ला०—"यही तो बात है। सच कहता हूँ गुप्ता, मुझे पुरस्कार का कोई लोभ नहीं। यदि वह हाथ आया, तो सब तुम्हीं ले लेना। मुझे तो यही अच्छा लगता है कि एक बार यह संसार आततायियों से खाली हो जाता, सर्वत्र रामराज्य हो जाता।"

गुप्ता—"अच्छा भई, चलो खूब मन से सुराग लगाया जाय। मामले में काफी दिलचस्पी भी तो मिल गई।"

ला०—"वह क्या ?"

गु०—"वही जिससे तुम्हारी आँखें मिलीं और क्या ?"

लाल ने मुस्कुराते हुए कहा—"ओ वहाँ आप ?"

गु०—"कैसी गजब की सूरत है। कल्पना की आँखों ने कहीं पुस्तक में देखा हो, लेकिन इन आँखों ने तो कभी उसकी छाया भी न देखी। श्रीमती अजीत की छोटी बहन है न ?"

ला०—"ओहो ! गजब की वह सूरत है और गजब की तुम्हारी तारीफ। तो अब जासूसी छोड़कर कविता और उपन्यास लिखो। लेकिन मि० गुप्ता हमको किसी की ओर इस तरह देखने का क्या अधिकार है ?"

गु०—"पहले तो तुम्हीं ने देखा भई।"

गुप्ता के यहाँ से लाल पीली कोठी गए। उस दिन जो नवयुवती वहाँ आई थी, उसका नाम था हेमलता। उन्होंने वहाँ पहुँच कर पहले उसी को देखा। वह स्वागत-भाव से कुर्सी से उठ खड़ी हुई और एक कुर्सी आगे खींचते हुए कहा—"बिराजिए।"

"आप कष्ट न करें, मैं बैठ जाता हूँ। आप बिराजिए न।" लाल ने विनम्र स्वर में कहा।

दोनों कुर्सियों पर बैठ गए। हेमलता ने कहा—'आपसे ही मिलने के लिए मैं रुकी रही।"

इतना कहते-कहते हेमलता की आँखें छलछला गईं। लाल ने आश्वासन पूर्वक कहा—"देवीजी, साहस का सहारा लीजिए। दुःख में बस धैर्य ही काम देता है। क्या कहूँ, मनुष्य भी इतना असमर्थ है कि किसी का दुख बाँट नहीं सकता। मैं तो जब दुखियों को देखता हूँ, तो यही होता है कि उनकी वेदना मैं भी सह लेता, उनकी आहें ले मैं ही कराहने लगता।"

कुछ सहृदय अवश्य ही कातर आँसुओं में अपने आँसू मिलाते हैं, परन्तु मर्माहत को············।

हेमलता ने लम्बी साँस लेते हुए कहा—"आप जैसे सहृदय दुख बाँट लेते

हैं, वह हलका हो जाता है, अवश्य हलका हो जाता है। लेकिन आप पुलिस के।'

लाल ने कहा—"देवी जी, पुलिस के लोग सचमुच कठोर होते हैं। लेकिन उनमें भी किसी-किसी में सहृदयता होती है। मरुभूमि में भी हरे-भरे मैदान होते हैं। वस्तुत: यह मरुभूमि तो नहीं है, लेकिन बिगड़ते-बिगड़ते ऐसी हो गई है। है। क्या मैं आपका शुभ नाम जान सकता हूँ ?"

हेमलता—' मुझे हेमलता कहते हैं लोग, आपका शुभ नाम ?"

लाल —"पूरा नाम कुँवर वीरेन्द्रलाल है, लेकिन कहते हैं लोग लाल। हाँ, आप कह रही थीं शायद जाने की बात, वह क्यों ? इस समय आपके रुकने से बड़ा काम होता।"

हे०—"रुकने में मुझे कोई हानि नहीं। लेकिन इस मकान में जहाँ······।"

ला०—"मैं समझता हूँ। लेकिन······। कहिए तो आपके रहने का प्रबन्ध अन्यत्र कर दूँ।"

हे०—"रहूँगी भी कैसे ? बहन का पता अब तक न चला। उन्हें ढूँढना होगा ?"

ला०—"हाँ, उनके बिना तो सभी काम रुका हुआ है। आपको असुविधा न हो, तो मैं भी आपका साथ दूँ, या यों कहूँ, आप मेरा साथ दें।"

हे०—"मैं अवश्य आपके साथ चलूँगी।"

लाल कुछ कहने ही जा रहे थे कि एक नौकर चाय ले आया। उन्होंने कहा—"देवी जी, मैं तो चाय पीकर आ रहा हूँ।"

हे० —"थोड़ी और सही।"

लाल ने एक प्याला हेमलता की ओर बढ़ाया और दूसरा अपने लिए। कुछ देर में नौकर चाय की ट्रे ले चला गया और एक तश्तरी में पान, सिग्रेट और माचिस रख गया।

लाल बोले—"देवी जी पान तो मैं नहीं खा सकूँगा। क्षमा कीजिएगा।"

हे०—"क्यों ?"

ला०—"ऐसे ही।"

उन्होंने एक सिग्रेट लगाया और फिर बातें होने लगीं।

हे०—"आपने सब कुछ देख तो लिया ही है। कुछ पता चल रहा है, किसी

पर कुछ सन्देह हो रहा है ?"

ला०—"अभी तो जैसे बिल्कुल अँधेरे में हूँ। ठीक सन्देह भी नहीं कर पाता। इतना कहूँगा कि घटना में कुछ रहस्य अवश्य है।"

हेम ने मानो कुछ कातर होकर कहा—"कहीं-कहीं पुलिस की जांच में बड़ा अनर्थ हो जाता है। नौकरों से पुलिस की जो पूछ-ताछ सुनी, उससे यह भ्रम हो जाता है कि कहीं आप लोग बहन को ही न अपराधी स्थिर कर बैठें। लेकिन क्या आप सोचते हैं कि कोई भारतीय महिला अपने पति की हत्या कर सकती है ?"

ला०—"कर नहीं सकती, लेकिन असम्भव भी नहीं है।"

हे०—"हाँ, असम्भव तो नहीं है। लेकिन मुझे तो असम्भव ही लगता है।"

ला०—"आप अपनी ही आस्था से, अपने ही दृष्टिकोण से ऐसा कह रही हैं। लेकिन समाज में अनास्था की भी कमी नहीं और पुलिस का दृष्टिकोण···।"

हे०—"आप जो विश्वास कर सकते हैं, उसके तो ध्यान मात्र से मैं कांप जाती हूँ। आप लोग कैसे···?"

लाल ने कुछ विनोद भरी सरल मुस्कान से कहा—"आप कभी-कभी नहीं समझ सकतीं कि पुलिस क्या समझ रही है ? सत्य पर पहुँचने के लिए हम जिस टेढ़े-मेढ़े रास्ते से चलते हैं वह कहीं सत्य का असत्य और असत्य का सत्य प्रतीत होता है। पूरा विश्वास तो हम तभी करते हैं जब सत्य का पता लगा लेते हैं। लेकिन सत्य से अपना विनाश ही होता हो तो भी उससे डरना न चाहिए। सत्य से वस्तुतः विनाश हो भी नहीं सकता।"

इतने में नीचे कार की आवाज सुन पड़ी। हेमलता के कान खड़े हो गए। उसने व्यग्रता से कहा—"क्या बहन आ गईं ?"

हेमलता सिर से पैर तक सिहर उठी। वह नीचे उतरने ही जा रही थी कि एक करुण-कातर, क्लांत रमणी-मूर्ति ऊपर चली आई। ऐसी लावण्यमयी तरुण मृगनयनी सुहाग के सुष्ट सौष्ठव-सी नारी-प्रतिमा पर न हाथ में चूड़ियाँ, न माथ में सिन्दूर, वैधव्य की विधुर प्रतिमा-सी ! ओह !!

यह थी प्रेमलता, हतभागिनी प्रेमलता ! दोनों बहनें लिपट गईं। आँसू की नदी उमड़ गई। सिसकियों के आवर्त्त घूमने लगे, आहों के प्रश्वासित हाहा-

कार होने लगे ! एक-एक बूंद में, एक-एक सिसकी में, एक-एक आह में सुनने वाले का हृदय डूब रहा था, चक्कर खा रहा था, विक्षिप्त हो रहा था। मि० लाल चले थे सुराग लगाने, लेकिन इस समय उनका ही सुराग न था।

एक पुलिस आफिसर, सी० आई० डी० का सुविख्यात ईन्स्पेक्टर ऐसा कातर हो जाय, जनता की एक घटना की चीत्कार में, तो क्या यह उसके लिए घृणास्पद और हास्यास्पद नहीं ? जिसने कभी मानवता के करुण-कोमल क्रोड़ में क्रीड़ा की हो, आँसू का आलिंगन किया हो, संवेदना का स्पर्श किया हो, उससे पूछिए। जीवन के जिस निकुंज में आँसू की एक बूंद में, हृदय के एक निस्पंदन में, आह की एक कराह में, प्रेम की एक मुसकान में दर्प, दमन, मिथ्या, मान एवं निर्मलता का सारा आडम्बर बह जाता है, वहाँ पुलिस अफसर विपन्न व्यक्ति, किंचन-अकिंचन तथा शासक और शासित में क्या कोई भेद रह जाता है ?

मि० लाल विस्मित हो गए। उनका हृदय आर्द्र हो गया, उनकी आँखें गीली हो गईं। पर उन्होंने अपने को सँभाला और उनके निकट जाकर कहा—"देवी जी, क्या आप लोग ऐसे ही रोती रहेंगी ? आप राजपूत हैं, क्षत्राणी हैं। जैसे आप आँसू बहा सकती हैं, वैसे ही उन्हें पी भी सकती हैं। आप अपने पति, पुत्र तथा भाइयों को अपने हाथों सजाकर समर में भेजने वाली हैं। आप 'जौहर' की गगन भेदिनी अमर ज्वाल-शिखा हैं, आप मधुसूदन, मुरारी, बनवारी की तरह वनदावा पी सकती हैं। आप शंकर की तरह कालकूट पचा सकती हैं।"

लाल के हृदयोछ्वास-भरे शब्दों से करुण-कातर बहनों को रोमाञ्च हो आया। उनकी आँखें खुल गईं। मानो महाशोक सागर में बहते हुए को किसी ने आश्वासन के ऊँचे टीले पर बिठा दिया हो।

श्रीमती प्रेमलता ने अपनी गीली आँखों से एक बार लाल को देखा। लाल का हृदय धड़क उठा। हाय अभी कल यह उर्वशी सुहागिनी सधवा थी, आज अभागिनी विधवा है। प्रेम, सुषमा, सुहाग, मानो सब कुछ अपहृत हो गया।

लाल ने विनीत स्वर में कहा—"मैं इस केस का सुराग लगा रहा हूँ। आपसे बहुत कुछ पूछना था। मैं और आपकी ये देवी जी अभी आप ही को ढूंढ़ने रवाना होने वाले थे। आप कहाँ थीं ?"

प्रेमलता कुछ कहने ही जा रही थी कि उनकी दृष्टि कुँवर साहब के पलँग पर जा पड़ी। वे फिर विह्वल हो उठीं। गिरने ही जा रही थीं कि लाल ने उन्हें सम्भाल लिया और तब वे स्वयं भी सँभल गईं। आप राजपूत हैं, क्षत्राणी हैं, जौहर की ज्वाल-शिखा हैं—ये शब्द उनके कानों में गूँज उठे।

लाल उनके मन को अन्यत्र आकृष्ट करने के लिए लाल और हरी कोठियों की हत्याओं का विवरण सुनाने लगे। वह सब सुनने पर उन्होंने अपने विषय में कहा—"मैं सीधी घर न जाकर अपनी एक बाल सखी के यहाँ चली गई। सोचा बहुत दिन हुए, मिलती चलूँ। प्रयाग में उसकी ससुराल है। उसने मुझे कई दिन रोक लिया। घर पहुँची और··· ।"

लाल ने उस दिन उनसे और कुछ न पूछा, केवल आश्वासन ही देते रहे। प्रेमलता को जो आश्वासन और साहस उनसे मिला, उससे कम विस्मय भी उन्हें इस बात से न हुआ कि एक जाँच करने वाले पुलिस कर्मचारी में वे ऐसी सहानुभूति देख रही थीं। पुलिस का अफसर, सरकार का कर्मचारी ऐसा हो ऐसा तो उन्होंने कभी सुना भी नहीं था। क्षण-भर के लिए सोचा यह सब किसी सिद्धि के निमित्त प्रवंचना न हो। परन्तु तत्क्षण लाल की आकृति और मुद्रा उनसे कह उठी। 'प्रवंचना ! अरे यहाँ प्रवंचना यहाँ देवीजी ?"

लाल के चले आने पर प्रेमलता ने हेम से उनके विषय में पूछा। उसने सब कुछ बताया और कहा—'बहन मुझे भी विस्मय होता है। जो कुछ इनमें देखती हूँ, वह उनका पद विश्वास नहीं करने देता। परन्तु विश्वास न करना भी तो मानो अपना ही अविश्वास करना है।"

एक बात लाल के प्रति उनके स्नेह को और भी सबल बना रही थी। लाल का रंग-रूप, आकार-प्रकार कुँवर अजीतसिंह से बहुत मिलता-जुलता था।

परन्तु इसमें हर्ष और विषाद, सुख और दुःख दोनों थे।

वृद्धा का आश्वासन

हेमलता भी एक विधुरा-सी रहे, न शृंगार करे, न ठीक से अहार-विहार करे, यह प्रेमलता को इस अवस्था में भी अच्छा नहीं लगता था। वह अपने हाथ से उसे सजाती, आग्रह और अनुरोध से खिलाती-पिलाती। वह कहती—"बहन! यह सब तुम क्या करती हो? मुझे अच्छा नहीं लगता।" प्रेमलता कहती—"तू मेरे दुःख को कुछ हलका रखना चाहती है, तो मैं जैसे कहूँ, वैसे ही कर।" हेमलता चुप रह जाती।

प्रयत्न करने पर भी आज आठ बजे रात से पहले मि० लाल पीली कोठी न पहुँच सके। आकर प्रेमलता के कमरे में बैठे। बिजली का प्रकाश था। प्रेमलता और हेमलता दोनों बहनों के रूप-रंग, शील-स्वभाव में घना सादृश्य था, इससे अथवा उनके अतुल, शील, सौंदर्य से दर्शक अपनी सारी सहानुभूति उन्हें श्रद्धांजलि देने में कृतकृत्य हो जाते, कौन जाने?

विद्युत्प्रभा में सद्यस्नात शरद ज्योत्स्ना जिसमें करुण का मधुर रस घुल-मिल गया हो—ऐसा ही आभास था उस सौंदर्य में।

बहुत-सी बातों के बाद लाल ने कहा—"देवी जी, अप्रसन्न न हों, तो मैं कुछ आप से पूछूं। लेकिन समझ लीजिएगा कि जो कुछ पूछूंगा, वह शायद आपको अच्छा न लगे।"

प्रेमलता ने कहा—"क्या आपको उन बातों से कोई विशेष लाभ होगा?"

लाल—"क्या आप यह भी सोचती हैं कि मैं आपको व्यर्थ कष्ट दूंगा?"

प्रेमलता—"अच्छी बात है, पूछिए।"

ला०—"उस रात आप और कुँवर साहब में किस बात पर कहा-सुनी हो रही थी?"

प्रे०—"ऐसा तो हम लोगों में प्रायः हुआ करता था। किसी नायक-नायिका

की बात ले ली, कोई सिद्धान्त ले लिया, वाद-विवाद होने लगा। हम लोगों में अपने विषय में कभी कहा-सुनी नहीं हुई।"

ला०—"सुनता हूँ इधर कुछ दिनों से आप लोगों में मन-मुटाव चल रहा था।"

प्रे०—"जी हाँ, वह प्रेम का मन-मुटाव था, मान था।"

ला०—"क्षमा कीजिएगा, यह इसलिए पूछा···।"

प्रे०—"मैं यह क्यों जानना चाहूँ? जाने दीजिए, मैं बुरा तो मानती नहीं।"

ला०—"दिवाकरजी को आप जानती हैं न?"

प्रे०—"हाँ, उनके मित्र थे, बहुधा आया करते थे।"

ला०—"आप उनके सामने आती थीं?"

प्रे०—"हाँ, कभी-कभी।"

ला०—"उस रात वे आए थे?"

प्रे०—"जी नहीं।"

ला०—"मि० गांगोली गुप्ता को जानती हो?"

प्रे०—"सी० आई० डी० के इंस्पेक्टर?"

ला०—"हाँ! वे भी यहाँ आया-जाया करते थे? कुँवर साहब के मित्रों में वे भी हैं?"

ला०—"उनके सामने आप आती थीं।"

प्रे०—"जी नहीं।"

ला०—"उन्हें और दिवाकरजी को कभी एक साथ कुँवर साहब के पास देखा?"

प्रे०—"नहीं।"

"कोई है? बिटिया!" ···इन शब्दों से उनकी बातों की शृंखला टूट गई। हेम ने पूछा—"कौन है?"

नौकर बोला—"ये माँ जी, आपको देखना चाहती हैं।"

"माँ जी! कौन माँ जी?" हेम कमरे के बाहर गई। देखा एक वृद्धा खड़ी है। नौकर ने वही बात फिर दुहराई।

"माँ जी, आप कहाँ से आ रही हैं?" मधुर शब्दों में हेम ने पूछा।

वात्सल्य के स्नेह-स्निग्ध स्वर में वृद्धा ने कहा—"तुमको देखने आई हूँ बिटिया, और कोई नहीं है ?"

"मेरी बहन है।"

"कहाँ है ?"

स्नेह और कुछ विस्मय में अभिभूत हो हेम वृद्धा को उसी कमरे में ले गई। वृद्धा ने लाल की ओर देखकर कहा—"तू यहीं है ?"

"हाँ माँ," कहते हुए उन्होंने वृद्धा को एक कुर्सी पर धीरे से बिठा दिया।

उसने फिर एक कातर दृष्टि प्रेमलता पर डाली। प्रेमलता ने श्रद्धा-भरी प्रश्नात्मक दृष्टि से लाल की ओर देखा।

"तुमको देखने आई हूँ बिटिया रानी।" वृद्धा ने प्रेमलता की ओर देखकर कहा। वृद्धा की आकृति से प्रेमलता का यह अनुमान करना कि यह लाल साहब की माँ होगी और लाल का यह कहना—"मेरी माँ हैं," साथ ही हुआ।

फिर क्या था ? दोनों बहनें माँ से लिपट कर रोने लगीं। वृद्धा आँसुओं में अभिभूत हो गई। स्वस्थ होने पर कहा—"बिटिया रानी रोओ नहीं। कितना रोओगी ? देखती हूँ रोते-रोते आँखें फूल आई हैं। भगवान की माया बड़ी विचित्र है। ऐसी सतियों को··· । जिस पतिदेव की साक्षात् आराधना करती थी, अब सृष्टि में उसकी ही पूजा करो। जीते जी पति की पूजा तो बहुत-सी स्त्रियाँ किया करती हैं; जो उसके मरने पर भी वैसी ही प्रेमाराधन करे, वह धन्य है। उनकी आराधना करने के लिए जिओ, तपस्या करने के लिए जिओ, दुःख को सुख समझ भोगने के लिए जिओ। बिटिया रानी रोओ मत, वृद्धा माँ की बात मानो।"

क्लान्त बहनों के चतुर्दिक मानो कोई नूतन आलोक जगमगा गया हो। उन्हें लगा मानो वे देववाणी सुन रही हों; मानो साक्षात् कल्याणमयी जगजननी उस वृद्धा के रूप में अवतीर्ण हुई हों।

ऐसी माँ और ऐसा बेटा ! देर तक मंत्र-मुग्ध-सी दोनों बहनें यही सोचती रहीं। कुछ देर बाद लाल ने कहा—"अब तो मैं जाऊँगा। तुम माँ ?"

प्रेमलता ने कहा—"माँ को न जाने दूँगी, और आप भी यहीं रहें।"

"माँ न जायँ। लेकिन देवीजी, मुझे जाना ही होगा। आप जानती हैं, इस

समय मुझे एकक्षण भर का भी विश्राम नहीं ।"

वृद्धा कह उठी—"ऐसा लड़का है यह बिटिया रानी कि न खाने-पीने का ध्यान, न सोने का । मैं न रहूँ तो बस इतना-सा खाकर उठ जाय ।"

लाल के अधरों पर, आँखों में एक स्नेह स्निग्ध मुसकान फैल गई । बोले—"माँ, तुम तो मुझे इतना ठूँस-ठूँसकर खिलाती हो कि मैं तंग आ जाता हूँ । मैं खूब खा लूँगा, खूब खा लूँगा । तुम मेरी चिन्ता न करो ।"

"देखा न बिटिया, इतना बड़ा हुआ, अभी बिल्कुल बच्चों-सी बातें करता है ।" वृद्धा ने कहा ।

माँ-बेटे की वार्ता सुन विधवा के आहत अधरों पर भी आज मुस्कराहट खेल गई । उनका हृदय असीम वात्सल्य में ओत-प्रोत हो गया ।

लाल जी चलने लगे तो माँ ने कहा—"देख, अलमारी पर औटाया हुआ दूध रक्खा होगा, सोने के समय पी लेना । भूलोगे तो कान नूछूँगी । समझा ?"

"हाँ माँ, समझा ।"

कुछ आशा

० ० ० ० ० ० ०

किसी कोठी में चोरी नहीं हुई, तो हत्या या तो किसी शत्रु से की गई हो, या आत्महत्या हो। मि० लाल बुरी तरह इन हत्याओं के सुराग में व्यस्त थे। मि० गुप्ता भी उतनी ही माथा-पच्ची कर रहे थे, यह तो ठीक नहीं कहा जा सकता। लेकिन वे भी व्यस्त ही थे। मि० लाल खा-पीकर चारपाई पर पड़ते ही तर्क-वितर्क, उहापोह, उधेड़-बुन में लग जाते। जैसे कवि अपनी कल्पनाओं तथा भावनाओं के बाजार में बेसुध-सा विचरण करता है, वैसे ही वे भी करते रहते। कभी तीन बजे नींद आती, कभी चार बजे, कभी आती ही नहीं।

जिस पथिक को कहीं-न-कहीं पहुँचना ही है, वह तो कोई भी रास्ता पकड़ चला जाएगा। परन्तु जिसका लक्ष्य अनिश्चित है वह तो वैसा कर नहीं सकता। बहुधा पुलिस की प्रवृत्ति ऐसी हो गई है कि वह जिस केस का सुराग लगाती है, उसमें वह सत्य पर पहुँचने की अपेक्षा इसी बात का प्रयत्न करती है कि किसी के भी विरुद्ध प्रमाण-संग्रह कर उसे अपराधी घोषित कर सफल अन्वेषक हो जाए। वह सत्य और न्याय की रक्षा नहीं, केवल अपनी कार्यवाही का क्रम पूरा करती है।

परन्तु मि० लाल ऐसे कर्मचारी न थे। ऐसा उन्होंने किसी अभियोग में नहीं किया था। वह यह भले ही कह सकते थे कि इस केस का सुराग नहीं लगता, परन्तु झूठे ही किसी को फाँस कर केस का चालान नहीं कर सकते थे।

लाल और पीली कोठी की हत्या में कोई वैसा इन्सपेक्टर सब ओर का रास्ता बन्द देख श्रीमती बोस तथा श्रीमती सुनीत पर ही सन्देह कर आगे बढ़ता और उन्हें अन्त में अपराधी भी स्थिर कर सकता था। परन्तु मि० लाल कुछ ऐसे मनोविज्ञान-विशारद थे कि वे संदिग्ध व्यक्ति को देख कर इतना तो

जान ही लेते थे कि उसने अपराध नहीं किया है।

न तो वे किसी नौकर पर सन्देह कर रहे थे, न श्रीमती बोस, अथवा कुँवर अजीत पर। सन्देह उन्हें कुछ था, या नहीं और था तो किस-किस पर, कुछ कहें तब तो मालूम हो। कभी-कभी सजीव के पीछे निर्जीव पर भी सन्देह करते रहे हों तो कोई आश्चर्य नहीं। लाल कोठी और उसके साथ-साथ समीप में ही उसी कारीगर ने जो एक छोटा सा मकान बनाया था, लाल ने खूब देख-भाल लिया था।

मुहल्ले के एक बुड्ढे से उनसे बातचीत हुई। उसने कहा—"सरकार, क्यों परेशान हो रहे हैं? आज्ञा हो तो कुछ मैं भी कहूँ।"

लाल ने उसे प्रोत्साहन देते हुए कहा—"तुम्हीं लोगों से तो पूछना हैं। तुम तो पुराने हो, बहुत-कुछ देखा सुना है।"

"सरकार कहीं बैठ जाएँ तो कहूँ। यही हमारा घर है, भीतर चले चलिए।" बुड्ढे ने आग्रहपूर्वक कहा।

वे भीतर गए। एक टूटी-सी कुर्सी रखकर वह बोला—"इसी पर बैठ जायँ सरकार। "क्या करें?" लाल बैठते हुए बोले—"बहुत ठीक है मैं तो जमीन पर ही बैठ जाता।"

बुड्ढा एक चटाई पर बैठ कहने लगा—"यह जमीन जहाँ ये तीनों कोठियाँ बनी हैं, बहुत दिनों तक खाली पड़ी रही। बहुत पहले यहाँ एक सांकलदीपी ब्राह्मण की बहुत बड़ी हवेली थी। उसके पास बहुत धन था। इसी मुहल्ले में रतनदास नाम के बहुत बड़े महाजन रहते थे। उनका नाम कौन नहीं जानता? कलकत्ता, बम्बई के लोगों को छोड़ इतना बड़ा धनी कोई न था।

उनसे और ब्राह्मण देवता से थोड़ी-सी जमीन के लिए लड़ाई हो गई। लाखों रुपये लड़ने में लग गए। अन्त में ब्राह्मण देवता जीत गए और वे हार गए। उनमें बहुत बैर बढ़ा। यहाँ तक कि रतनदास ने रात को डाका डलवाकर ब्राह्मण देवता का सब धन लुटवा लिया और कोठी भी जला दी। उनके आततायियों ने घर वालों को भागने भी न दिया। बाल-बच्चे, स्त्री-पुरुष सब जलकर राख हो गए।

बहुत दिनों तक इस पर किसी को मकान बनाने का साहस न हुआ। म्युनि-

सिपैलिटी ने इस ओर ध्यान दिया। बात यों फैल गई थी—'इस पर ब्रह्महत्या हुई है, यह भूतों का अड्डा बन गया है। यहाँ जो मकान बनाएगा, या रात का जायगा, प्राणों से हाथ धो बैठेगा।' म्युनिस्पैलिटी से आर्डर निकाला गया, 'जो इस बात की चर्चा करते पाया जायगा, उसे दो सौ रुपये जुर्माना और छः महीने की सख्त सजा होगी।"

तब से बात उफान की तरह बैठ गई। लोग चर्चा भी करते, तो अपने घर में। कुछ दिन में वह भी कम हो गई। बात सही है सरकार। ब्रह्महत्या क्या ऐसी-वैसी चीज है? रतनदास के वंश का एक पुतला भी पिण्डा-पानी देने को न बचा। एक-एक कर सबको खा डाला। सारा धन नष्ट हो गया। कोठी भी गिर गई। उसका एक ठिकड़ा भी नहीं है।"

"कहाँ थी उनकी कोठी?" लाल ने पूछा।

"रामघाट पर सरकार। वहाँ झाऊ और दो-एक नीम के पेड़ हैं, जो हवा में हिल-हिल बीते दिनों का संकेत करते हैं।" वृद्ध ने यों कह अपनी कहानी प्रारम्भ की—"जब ये कोठियाँ न बनी थीं, रात को हम लोग बराबर देखा करते कि बहुत से लोग लम्बे कद के, बड़े-बड़े बाल, मुख में अंगारे लिए इधर-उधर टहला करते और आपस में विचित्र मरोड़े हुए स्वर में बातें और संकेत किया करते। नित्य ही उनका अभिनय हुआ करता। रविवार और मंगलवार को विशेष रूप से।"

"सरकार! आप क्या पता लगाते हैं? जो कोई इनमें रहेगा, सबकी यही दशा होगी। वे मनुष्य तो हैं नहीं कि आप उन्हें पकड़ लेंगे।"

"तो और लोगों को क्यों नहीं मार डाला?" लाल ने पूछा।

"जब उनकी तबियत होगी, मारेंगे। मारे बिना छोड़ेंगे नहीं सरकार।" बुड्ढा बोला।

लाल—"इन कोठियों को बनाया किसने? इस लाल कोठी से ही मेरा मतलब है।"

वृद्ध०—"वह तो कहीं दूर का कारीगर था। नाम था शायद कर—हाँ, करमल! करमल!"

ला०—"कैसा था वह? कहाँ का रहने वाला था?"

वृ०—"कुछ गोरा-गोरा, पतला-पतला, कुछ लम्बा-सा मुँह। रहने वला

पूना का था शायद।"

लाο—"क्या अवस्था होगी ?"

वृο—"अब तो वह सठियाने के करीब होगा।"

लाο—"गत बार कब देखा उसे ?"

वृο—"कोठी बनाते ही समय देखा था और शायद एक बार और देखा था कई साल हुए।"

लाο—"इधर कभी नहीं देखा ?"

वृο—"कई साल तो मैं कानपुर रहा। इधर आया तो पिशाच-मण्डी के निकट रहता रहा। एक सप्ताह हुआ इस मुहल्ले में आया था। अपना पहले का घर यहीं था। वह बिक गया। लेकिन सरकार यह सब पूछकर क्या कीजिएगा ? क्या मेरी बातों पर विश्वास नहीं होता ? बहुत पढ़े-लिखे लोग यह नहीं मानते। लेकिन बात तो सही है।"

लाο—"नहीं, विश्वास क्यों न मानूंगा ? यह पास का छोटा-सा मकान उसी कारीगर ने कोठी के साथ ही बनाया था।"

वृο—"जी, हाँ।"

× × ×

मिο लाल ने निद्धू को मिलाना शुरू किया। मिलाने से यही प्रयोजन था कि उसका भय दूर कर दें, जिससे उससे जो कुछ पूछा जाय, उसका सही-सही जवाब दे सके। पुलिस अफसरों से बातें करने में बहुत-से लोग डरते हैं, वह तो बच्चा था।

अब मिο लाल ने उससे मेल मिला लिया था। कई बार उसे मिठाइयाँ और पैसे दिए थे। वह समझने लगा था कि वे उसे प्यार करते हैं। अब वह उनसे परिचित हो गया था।

एक दिन मिο लाल उससे एकान्त में मिलने का अवसर ढूंढ़ रहे थे। कहीं ऐसे एकान्त में जहाँ वह अचानक पहुँच गया हो। एक दिन चार बजे शाम को वह मोती पार्क के निकट मिल ही गया।

पूछा—"कहाँ घूम रहे हो निद्धू ?"

निद्धू ने सलाम कर कहा—"सौदा लेने आया था सरकार।"

"आओ बैठो न, फिर जाना। तुमसे कुछ बातें करूँ। तुम्हारी बातें बड़ी अच्छी लगती हैं। दीवाली आ रही है अपना इनाम माँग लेना।" लाल यों कहते हुए पार्क में चले गए। लता-मण्डप के निकट एक बेंच पर बैठ गए और निद्धू को भी बिठाया।

इधर-उधर की दो-चार बातें कर बोले—"तुम्हारी कोठी के आस-पास कोई ऐसा आदमी है जिससे तुम्हारी खूब जान-पहचान और बात-चीत हो?"

निद्धू—"ऐसी जान-पहचान तो हमारी नहीं है सरकार। हाँ एक आदमी था, वह कभी दुकान कर लेता, कभी खुमचा लगा लेता, वह मुझे बहुत मानता था। मुझसे खूब बातें किया करता था। बहुत ठिकाने से सौदा-सुलुफ दिया करता था। पकौड़ियाँ, कचौड़ियाँ तो वैसे ही दिया करता था।"

लाल—"वाह जी निद्धू। भला तुम्हें मानेगा कौन नहीं! तुम बड़े अच्छे लड़के हो। क्या बातें करता था तुमसे वह?"

नि०—"हाल-चाल पूछता। मेरा सुख-दुख पूछता। मेरे मालिक को पूछता। कहाँ सोते हैं, तुम्हें कैसा मानते हैं, मालकिन कहाँ सोती है।"

लाल—"वह कभी तुम्हारी कोठी पर भी आता रहा क्या? बड़ा अच्छा आदमी मालूम होता है।"

निद्धू—"हाँ, सरकार, जब मन करता चला आता।"

लाल—"तुम्हारे मालिक से भी उससे भेंट होती?"

नि०—"नहीं सरकार! मालिक से बड़े लोग मिलते कि ऐसे-वैसे।"

ला०—"जिस रात तुम्हारे मालिक मरे, उस रात भी तुमसे उससे भेंट हुई थी।"

नि०—"हाँ सरकार, मैं उसके यहाँ गया था, वह मेरे यहाँ आया था।"

ला०—"तुम्हारे यहाँ कब आया था।"

नि०—"दस बजे के करीब आया होगा।"

ला०—"और नौकरों से भी भेंट हुई थी।"

नि०—"उस रात तो किसी से नहीं। मेरी कोठरी में बैठा था। कहा—'आओ तुम्हें चटपटी खिलाऊँ।" मेरे ही यहाँ तो वह अधिकतर बैठता था। उस समय तो जान-बूझकर केवल मेरे पास ही बैठा। सब लोगों को बहुत चटपटी देता था।"

ला०—"तब तुम अपनी मालकिन से छुट्टी लेकर आये थे? तुम तो नित्य उनसे पूछ कर सोने जाते हो।"

नि०—'हाँ, सरकार पूछ आया था।"

ला०—"तब तुम्हारी मालकिन सोने जा रही थीं?"

नि०—"हाँ सरकार।"

ला०—'तुम्हारे मालिक भी?"

नि०—"हाँ।"

ला०—"वहाँ से आए, तो तुमसे और उससे क्या बातें हुईं?"

नि०—"उसने पूछा—"मालकिन और मालिक सो गए?" मैंने कहा—"हाँ।" उसने कुछ हँसकर कहा—"कहो भई, एक जगह सोते है कि अलग-अलग।" मैंने कहा—"अलग-अलग सोते हैं वे अपने कमरे में सोते है, वे अपने में।" फिर मुझे ध्यान आया कि यह तो हँसी कर रहा है। मैं बोल उठा—"मालिक की दिल्लगी करते हो क्या?" वह हँस कर बोला—"नहीं भई, इसमें दिल्लगी क्या है?"

ला०—"फिर वह कब गया या तुम्हारे ही यहाँ सोया रहा? और कोई बात हुई?"

नि०—"थोड़ी ही देर में चला गया। और कोई वैसी बात नहीं हुई। इधर-उधर की बातें याद नहीं रहतीं सरकार।"

ला०—"कैसा रंग रूप था निद्धू?"

नि०—"पतला, कुछ गोरा।"

ला०—"मुँह कैसा था?"

नि०—"गोला नहीं था सरकार।"

ला०—"तब?"

नि०—"कुछ लम्बा थी सरकार।"

कुछ ऊबता-सा निद्धू ने कहा—"सरकार बहुत पूछते हैं।"

लाल ने कहा—"तुमसे बातें करने को जी चाहता है निद्धू। फिर कुछ न कुछ कहना ही चाहिए।"

"हाँ, यह तो बताओ उस रात के बाद फिर वह तुमसे कब मिला, और अब कहाँ है?"

नि०—"जाते समय कह गया था मुझे बाहर जाना है, शायद भोर में ही चला जाऊँ। जल्द लौटूंगा। लेकिन वह हप्ते भर बाद गया। वैसा पहचानी मेरा कोई नहीं।"

लाल ने पाकेट से दो रुपए निकाल निद्धू को देते हुए कहा—"लो निद्धू, अब घर चले जाओ। हाँ, उसका नाम क्या था ? कहाँ का रहने वाला था ?"

"न जाने कहाँ का था सरकार, नाम शायद करमल था।"

दत्रारा

० ० ० ०

मिस्टर गुप्ता अपना चक्कर अलग लगाने लगे थे। पीली कोठी से शायद उनकी विशेष दिलचस्पी थी। आज वहाँ उन्होंने बहुत छान-बीन की, हर एक कमरा, हर एक कोठरी, हर एक वस्तु देखी। दोनों बहनों से बहुत से प्रश्न किए। अन्त में कहा—"आपको तो कष्ट नहीं दे सकते परन्तु यदि ये (हेमलता) इस समय मेरे साथ लाल साहब के यहाँ चलने की कृपा करें तो बड़ा अच्छा हो।"

प्रेमलता—"कहाँ हैं वे?"

गुप्ता०—"दसवतिया बाग में।"

प्रे०—"क्या काम है?"

गु०—"यह न पूछिए देवी जी! पुलिस का काम ठहरा। जाने पर मालूम हो जायगा।"

हेमलता कह उठी—"जाने में क्या हर्ज है बहन?"

प्रेमलता ने गुप्ता की ओर देखते हुए कहा—"लाल साहब यहीं आ जायँ, तो क्या हानि है?"

गुप्ता आतुरता भरे आग्रह के भाव से कह उठे—"नहीं देवी जी, यह ठीक न होगा।"

"मैं जाती हूँ बहन। कार से तो जाना है। जल्द लौटूँगी", इतना कह हेम भीतर गई और अपना हैण्डबेग ले आ गई और बोली—"चलिए साहब।"

प्रेमलता उसे देखती रही। वह कार में बैठ गई। गुप्ता ने गाड़ी खोली। गाड़ी दौड़ती जाती थी और बातें होती जाती थीं; इस सड़क से उस सड़क, उस सड़क से इस सड़क पर चक्कर काटते गाड़ी चली जा रही थी। अंधेरा होने लगा, लेकिन अभी दसवतिया बाग नहीं पहुँचे।

हेम ने कहा—"क्यों साहब, क्या अभी दसवतिया बाग नहीं आए? कब

के चले है ?'

गुप्ता बोले—"आप घबराती क्यों हे ? अब बहुत दूर नही, आ ही गए है। क्या घूमने मे आपका कुछ मनोविनोद नही होता ?"

कुछ दूर और आकर वे एक घने मुहल्ले मे आ गए। कार खड़ी हो गई। दोनों उतरे और एक मकान के भीतर चले। कुछ दूर जाकर सीढियाँ मिलो। उसके ऊपर चढे। एक कमरे मे गए। कमरा सजा-बजा था। हेम को एक सोफे पर बैठने का आग्रह किया। उसने पूछा—"क्या इस मकान मे कोई नही रहता, किसका मकान है ? इस वक्त कोई नही है।"

"अपना ही घर है। सब लोग एक मित्र के यहाँ उत्सव मे गए है, नौकर होगा।"

हेम०—"लाल साहब कहाँ है ?"

गुप्ता—"अब आ ही जाना चाहिए। आप बिराजे, मै अभी आया।"

गुप्ता नीचे आए। धीरे से भीतर से सदर दरवाजा बन्द कर ऊपर चले। इसके पहले किसी नौकर का नाम ले दो-एक आवाज लगा दी थी। ऊपर जा कर कहा—"बडा पाजी नौकर है। कही चटपटी खाता होगा। चाय लाऊँ देवीजी।"

हे०—"जी नही। आप बैठिए। कितनी देर लाल साहब की प्रतीक्षा की जायगी ?"

गु०—"आध घण्टे तक।"

हे०—"बात क्या थी ?"

गु०—"आ न जाने दीजिए लाल साहब को।"

हे०—"अभी बताने मे कोई हानि है ?"

गु०—"नही, हानि क्या होगी ?"

हे०—"मुझे बुलाया है, तो मेरा कुछ सम्बन्ध तो उससे अवश्य ही होगा, और शायद प्रकट भी करना ही होगा। फिर उसे इस तरह गुप्त रखने मे कोई लाभ नही दीखता। परन्तु मुझे जानने की ऐसी आतुरता भी नही। आने ही दीजिए लाल साहब को।"

गु०—"आप अप्रसन्न तो नही है ?"

हे०—"नही-नही गुप्ता जी, अप्रसन्न होने की क्या बात है ?"

क्या इस समय एक दृष्टि हेमलता की ओर डाल लेना अनुचित होगा ? बिजली के प्रकाश मे तरुणोन्मुखी मुग्धा को देख लेना यथार्थ न होगा ? क्या कोई ऐसा पाठक भी होगा जो उसे न देखता हो ? कितने रूप-वर्णन पर नाक सिकोड लेते है । किन्तु वे प्रचारक है, मिथ्यावादी है। कितने प्रेम की चर्चा पर जुगुप्सा का भाव व्यक्त करते हे । किन्तु वे भी वैसे ही है ।

विश्व रूपमय है, भाव रूपमय है; रूप मे आकर्षण है । प्रेम उसकी शक्ति है । चराचर जगत उस चक्र पर घूम रहा है । रूप की आराधना कर रहा है । यही जीवन की प्रगति है ।

दिनमणि की किरणो के कोमल स्पर्श से कमलिनी खिलखिला पड़ती है । सुधाकर के सुशीतल शुभ्र स्मित में अनन्त कलियाँ घूँघट खोल अपने कोमल कपोल उसके मधुर कराधरों से छुआ देती है । नभ के नीले पटल से शशि के निकलते ही जल मे बीछियाँ उमँगने लगती है । आम्र-मजरी के मुख निकालते निकालते कोयल कूक उठती है । नवल नील नीरद माला की सघन श्यामल छाया मे मयूर-मयूरिनी मत्त हो नाच उठते है ।

ब्रह्मा ने अपने हाथ से गढा है, जिस रूप को देख लोग यों कह उठते है, हेमलता का रूप ऐसा ही था । वह अपने साधारण-से-साधारण वेश मे थी, शृगार न बनाया था । परन्तु उसका नैसर्गिक सौन्दर्य रोम-रोम से प्रस्फुटित हो रहा था। किन्तु यहाँ उसके अंग-प्रत्यग के वर्णन की बात नही कही गई थी, वह तो थी बस एक दृष्टि डाल लेने की ।

पर इतने ही में आपने देख लिया होगा कि उसके उज्वल निर्मल कज्जल-कलित खंजन-मजन नेत्र जिधर पड़ते थे, उधर मानो शरद का प्रकाश हो जाता, यदि सुए को अपनी मृदुला एवं स्निग्धता पर, स्वर्ण को अपनी कान्ति पर कुछ दर्प रहा होगा, तो हेम को देख अवश्य ही चूर हो गया होगा ।

न जाने किस असावधानी से काली-कुटिल केशराशि की दो अलकें अलग हो सुस्निग्ध कपोलों पर आ गई । चित्रकार ! पाठक ! बस यहाँ इतना ही ।

गुप्ता मुग्ध नेत्रों से वह मनोहारिणी सुषमा देख रहे थे । परन्तु हेम नहीं जानती थी कि उसकी दो अलके कैसा गजब कर रही थी।

गुप्ता ने कहा—"देवीजी, आप कुछ अपना अनुमान तो बताइए ।"

हेम०—"मैं क्या बताऊँ ? कुछ समझ में नहीं आता।"

गुप्ता—"लाल साहब ने कुछ अपना अनुमान बताया है आपसे ?"

हेम०—"जी नहीं।"

गु०—"हम पता लगा लेंगे तो आप अपनी ओर से क्या पुरस्कार देंगी ?"

हे०—"मैं।"

गु०—"हाँ आप ?"

हे०—"जो कहिए।"

गु०—"मेरे कहे अनुसार आप दे सकेंगी ?"

हे०—"आपके पुलिस विभाग से जो इनाम देने की विज्ञप्ति है, उससे अधिक दूँगी।"

गु०—"वह इनाम नहीं। आप उससे कहीं बड़ा इनाम दे सकती हैं।"

हे०—"तो कहिए न आप ही।"

गु०—"आपका आदेश हो तो कहूँ।"

हे०—"इसमें आदेश की क्या बात है, कहिए।"

गुप्ता का हृदय धड़क रहा था, चेहरे पर लाली दौड़ रही थी, कण्ठ निरुद्ध हुआ जा रहा था। बिखरता हुआ साहस बटोरकर कहा—"आपकी कृपा, आपका प्रेम।"

"मेरी कृपा, मेरा प्रेम! यह तो साधारण बात है।" हेम ने कहा।

गु०—"सच कह रही हैं ?"

हे०—"सच कह रही हूँ। मैं आपका कोई कल्याण कर सकूँ, आपको कहीं आगे बढ़ा सकूँ, तो मुझे बड़ा हर्ष होगा।"

गु०—"आप जो मेरा कल्याण कर सकती हैं, वह संसार में कोई नहीं कर सकता।"

हे०—"बतलाइये मेरे योग्य क्या काम है ?"

गु०—"मैं आपका दास, भक्त, चिरजीवन सहचर होना चाहता हूँ, मेरे प्रेम की श्रद्धांजलि स्वीकार कीजिए।"

हे०—"क्या कह रहे हैं आप ?"

गु०—"जो कह रहा हूँ वही सच कह रहा हूँ। मुझ पर कृपा कीजिए।" इतना कह गुप्ता हेम के समीप जाने लगे। चाहा उसका हाथ पकड़ लें।

हेम ने कहा—"आप होश में आकर बातें नहीं करते। बतलाइए लाल साहब कब तक आएँगे।"

गु०—"आपके स्पर्श बिना मैं होश में नहीं आ सकता।"

गुप्ता ने हाथ पकड़ लिया। हाथ खींचते हुए हेम ने कहा—"शिष्टता की सीमा क्यों लाँघ रहे हैं ?"

"शिष्टता मेरे प्रेम में है, आपकी कृपा में है, स्पर्श में है, आलिंगन में है।" गुप्ता ने कहा और उसे बाहु-पाश में भर लेना चाहा। हेम खड़ी हो कुछ पीछे हटने लगी।

गुप्ता आगे बढ़ बोले—"तुम जा नहीं सकती हेम ! दुहरा बंधन है—मेरे हृदय का द्वार तुम्हें समेटे बन्द है और इस घर का द्वार भी बन्द है।"

हेम ने आवेश से कहा—"तुम समझ नहीं रहे हो किससे और कैसी बातें कर रहे हो। दूर हो जाओ।"

हेम फिर चलने लगी। गुप्ता सामने खड़े हो गए। बोले—"चलो सोफे पर हेम, जाओ न। जो आग लगाई है, उसे बुझाती जाओ।"

गुप्ता ने हाथ हेम के कंधे पर रक्खा, हेम हाथ को एक झटका दे आगे बढ़ी। गुप्ता ने पिस्तौल निकाल उसनी छाती की ओर लगा दिया। हेम ने तुरन्त अपने बैग से पिस्तौल निकाला और उसका मुख उनके पिस्तौल के सामने कर दिया।

गुप्ता ने कहा—"मेरी बात मान जाओ ! तुम्हें भी मरना होगा और शायद मुझे भी। तुम्हें पता नहीं कि कुँवर साहब की हत्या की हत्यारिनी तुम हो। तुम्हें बचायेगा तो गुप्ता, शूली पर चढ़ायेगा तो गुप्ता।"

बगल से छोटा-सा खंजर निकाल पिस्तौल के सामने रखते हुए हेम ने कहा—"बोलो मरना चाहते हो या जीना। तुम्हें पता नहीं मरने की धमकी किसे दे रहे हो ! पिस्तौल रख दो नहीं बस···।"

क्षत्राणी के अग्रगामी खंजर और पिस्तौल के सामने गुप्ता का साहस न ठहर सका। पिस्तौल रख दिया।

हेम ने झट पिस्तौल उठा लिया और चल पड़ी। गुप्ता ने हाथ जोड़ कर कहा—"देवी हेमलता, मुझे क्षमा कर दीजिए। यह बात किसी से न प्रकट कीजिएगा और मेरा पिस्तौल द्वार पर रखती जाइएगा, बार-बार हाथ जोड़, भीख माँग रहा हूँ।"

मिस मोरियो

० ० ० ० ० ० ०

आज गुप्ता ने हरी कोठी में देर तक मिस मोरियो से बातें कीं। बहुत से प्रश्न किए। सब का उत्तर दे मिस मोरिया ने कहा—"क्यों साहब! अब भी पुलिस ने यहाँ की सम्पत्ति पर अपने ताले लगाए हैं, इसका क्या अर्थ होता है? मुझे इसमें कोई आपत्ति नहीं, पर पूछती हूँ यों ही। मैं इतना ही चाहती हूँ कि हत्यारे का सुराग लग जाता।"

गुप्ता ने कहा—"पुलिस की सभी बातें आप कैसे समझ सकती हैं, और वह आपको समझाएगी ही क्यों?"

मिस मोरियो—"क्या पुलिस का मानवता से कोई प्रयोजन नहीं?"

गुप्ता—"है नहीं तो वह जाँच क्यों करती है? आततायियों का सुराग लगाना, उन्हें दण्ड दिलाना, क्या यह मानवता नहीं?"

मि०—"हैं क्यों नहीं? पर मुझे इस तरह अँधेरे में रखने से क्या लाभ?"

गु०—"आप मुझसे कुछ जानना ही चाहती हैं, तो चलिए एकान्त में।"

मि०—"एकान्त ही तो है यहाँ।"

गु०—"शायद कोई आ जाय।"

मि०—"कोई नहीं आएगा। चलिए उस कमरे में।"

दोनों पास ही दूसरे के कमरे में चले गए। मिस मोरियो ने कहा—"चाय तैयार कर दूँ तब तक।"

"जी नहीं, चाय पी चुका हूँ मैं। आप कष्ट न करें। आइए, यहाँ बिराजिए।" गुप्ता बोले।

मिस मोरियो गुप्ता के पास बैठ गई। गुप्ता ने एक ऐसी दृष्टि मिस मोरियो पर डाली, मानो उसमें अभी-अभी कोई नूतनता आ गई हो।

यदि उन्हें कोई दूर से देखता हो तो पहले वह उनकी भावभंगियों को ही देखेगा, फिर शायद यह जानने की चेष्टा करे कि वे क्या बातें करते हैं?

ऐसी बात है तो देखिए न, मिस मोरियो ऐंग्लो इंडियन लेडी है, बिल्कुल तरुणी है। रूप भी आकर्षक है। आँखों में खिचाव है लेकिन यह देखिए कि उसमें स्थिरता भी है। वेश-भूषा का क्या कहना ?

लेकिन कहीं कोई ऐसा न साहस कर बैठे कि हेमलता से उसकी तुलना करने लग जाय। सौन्दर्य राशि में कोई सौन्दर्य अपना निरालापन नहीं स्थिर रख पाता। परन्तु हेम जहाँ रहती, सुनी और देखी जाती वहाँ वह एक ही रहती। वह तुलनीय थी तो केवल प्रेमलता के साथ अपने ही वृक्ष की दूसरी कली के साथ। अस्तु।

गुप्ता ने पाकेट से सिगरेट केस निकाल मिस मोरियो के सामने उपस्थित किया। सिगरेट जले और बातें होने लगी। गुप्ता ने लम्बी साँस खींचकर कहा—"देखिए महाशया, मुझे जो कहना न चाहिए वही कहलाना चाहती हो और जो कुछ कहूँगा उससे आपको दुःख ही होगा।"

"आप कहिए मि० गुप्ता ! दुःख क्या होगा फिर हम सुख की ही आशा सदैव कैसे कर सकते हैं।" मिस मोरियो ने कुछ उद्विग्न हो कहा।

गुप्ता कुछ मलिन होकर बोले—"अब तक पुलिस इसी परिणाम पर पहुँची है कि मि० जान की हत्या आपने की है और आपका दान-पत्र जाली है।"

गुप्ता ने यह बात सुराग की नहीं कही तो न जाने किस अभिप्राय से ऐसी उड़ान भरी। वास्तव में अब तक उन्होंने सही जाँच नहीं की थी।

मिस मोरियो के शरीर का रक्त पानी-सा हो गया। उनके नीचे की धरती खिसक-सी गई। साहस बटोरकर बोली—"सच कहते है मि० गुप्ता।"

गु०—"जी हाँ सच कहता हूँ।"

मि०—"क्या आप भी इसी नतीजे पर पहुँच गए हैं, और लाल साहब भी ?"

गु०—"जी हाँ, अभी तक तो ऐसा ही है।"

मि०—"क्या आप इसे प्रमाणित कर सकते हैं ?"

गु०—"हम लोग जिस परिणाम पर पहुँचते हैं, उस पर सप्रमाण ही पहुँचते हैं। यह दूसरी बात है कि वह असत्य हो।"

मि०—"क्या गलत सुराग का कोई दायित्व आप लोगों पर नहीं। क्या आप लोग अपराधी नहीं हो सकते हैं ?"

गु०—"क्यों नहीं ? परन्तु तभी जब जान-बूझकर किसी लोभ या शत्रुता-वश ऐसा करते हों। नहीं तो इसका दायित्व उन पर होगा जो हमसे झूठा कहते हैं। हम घटनास्थल पर उपस्थित तो रहते नहीं। पूछ-ताछ करने से जो कुछ ज्ञात होगा, उसी को ठोंक-ठठाकर सच मानेंगे।"

मि०—"आप इस परिणाम पर पहुँचे हैं, तो ठीक है। लेकिन क्या आपको अपने लिए कोई भय नहीं ? मेरी पहुँच इस्पेक्टर जनरल और उनसे ऊपर तक के कर्मचारियों से भी है। आपको भी शायद जेल की हवा खानी पड़े।"

गु०—"क्या मुझे धमकियाँ दे आप अपना काम निकालना चाहती हैं ? आपको बुरा न लगे तो मैं आपको चुनौती देता हूँ कि आप मेरे विरुद्ध कुछ उठा न रक्खें। अच्छा आज जाता हूँ, नमस्कार।"

मिस मोरियो ढीली पड़ गईं, बोली—"आप तो नाराज हो गए। होना भी चाहिए, क्योंकि जिससे परमात्मा ही रूठा है, उस पर मनुष्य कैसे न रूठें। आपने जो कुछ किया, जो कुछ कर रहे हैं तथा करेंगे सब ठीक ही है। मेरा सर्वस्व चला गया, प्राण रह गए। मुझे हर्ष है कि शूली पर चढ़ इनसे भी छुटकारा पा जाऊँगी। अब जीने से कोई लाभ नहीं।"

मिस मोरियो की आँखें छलछला गईं। गुप्ता ने उन्हें संवेदना-भरी दृष्टि से देखा। आँसू में असीम शक्ति है। नारी के आँसू में वह शक्ति राशि और अधिक है। तरुणी के आँसू में और अधिक। विधवा तरुणी के आँसू में और अधिक। सती तरुण विधवा के आँसू में शक्ति की सीमा आँकना कठिन है। मनुष्य का हृदय मेरु है, तो वह उसे निर्झर-सा द्रवित कर सकता है। फौलादी लौह है तो वह राँगे-सा गला सकता है, चुम्बक-सा खींच सकता है।

यदि वह कृत्रिम है, तो भी अपना प्रभाव डाले बिना रह नहीं सकता। वह पीतल पर किए हुए सोने की वह सच्ची कलई है जो बहुत दिनों तक छूटती नहीं और वह सोने के भाव बिका करता है। वह सिनेमा के उन चित्रों सा है जो वास्तविक से भी सुन्दर सत्य प्रतीत होते है और वैसा ही अपना प्रभाव भी डालते हैं।

लेकिन गुप्ता तो पहले ही से न जाने कैसे खिंचे जा चुके थे, शायद बोले—"मैंने जो कुछ अभी कहा है वह केवल आपके प्रत्युत्तर में ही कहा। जो अभि-

योग के विषय मे कहा, वह अनुसन्धान की सत्य बात कही। परन्तु मैं विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि मेरे हृदय मे आपके प्रति जो सहानुभूति है, उसे आप नही जानता। आप मुझे केवल एक पुलिस कर्मचारी के रूप में देखती और समझती है।"

मिस मोरियो ने गीली-सी पलकें उठा गुप्ता की ओर देखा। देखा कि गुप्ता की भावभंगियाँ उनकी बातो का समर्थन कर रही थी।

गुप्ता फिर बोल उठे—"अब आप कहिए मै आपका कौन-सा काम कर सकता हूं। हाँ, यह तो भूल ही गया था। लेकिन······।"

बात काटकर मोरियो ने उत्सुकता से पूछा—"क्या भूल गए हैं। बताइए, बताइए! लेकिन देर क्यों लगाते है?"

गु०—"कैसे बताऊँ आपको तो मेरा विश्वास ही नही है।"

मि०—"विश्वास है, अब आपको मैं पुलिस कर्मचारी के अतिरिक्त जो आप का वास्तविक रूप है उसे भी देख रही हूँ, कहिए। अब आप ही मेरा विश्वास नही करते।"

गु०—"अच्छा तो बता ही देता हूँ। अब आप बहुत जल्द अरेस्ट कर ली जायँगी।"

मिस मोरियो सिहर उठी। उसका रग उड़ गया। विकृत स्वर मे कहा—"तो आप भी ऐसा ही करेंगे।"

गु०—"आप ही बतलाइए पुलिस कर्मचारी की अवस्था में मुझे क्या करना चाहिए।"

मि०—"आपका दूसरा रूप भी तो है। उससे आप मेरे लिए कुछ······। लेकिन आप सचमुच मुझे अपराधनी समझते है?"

गु०—'मै हृदय से चाहता हूँ कि आपके लिए जो कुछ मै कर सकता हूँ करूँ। लेकिन आपके लिए कुछ करना सहज नही है। कुछ भी हो, मै आपके काम आना चाहता हूँ। आपके विषय मे जो कुछ कहा है, वह सत्य मैं नही मानता, परन्तु वह प्रमाणित अवश्य है।"

मि०—"मै आपकी आभारी हूँ। मैं भी कुछ आपके काम आ सकूँ तो अपने को धन्य समझूँगी।"

गुप्ता की आँखें जो मोरियो की आँखों में कुछ पूर्व से ही पढ़ रही थीं, मानो उनमें अब नूतन रसोच्छ्वास पा गई हों। दाहिना हाथ मोरियो के कन्धे पर रखते हुए आकृति की लाली में एक सलज्ज-सी मुस्कान घोलते हुए उन्होंने कहा—"मोरियो ?"

"सच है कि पुलिस ने बिल्कुल ही झूठी जाँच की है। सच है कि मुझे शूली पर चढ़ाने और उतारने वाले मि० गुप्ता है ?" मोरियो ने कहा—"है न ?"

गुप्ता ने मुस्कराकर कहा—"बस एक मुस्कान अधरों पर आ जाय और मैं सब कुछ सच मान लूं।"

मिस मोरियो मुस्करा उठीं अधरों में, आँखो में, कपोलों मे जरा-सा कटाक्ष कुटिल करती हुई।

गुप्ता ने अँगड़ाई ले अपनी बाहें मोरियो के गले में डाल दी। स्मित-राग-रंजित अधरों और कपोलों के मधु चूम लिए। फिर दोनों एक पाश मे बद्ध हो गए।

घरेलू बातें

प्रेमलता और हेमलता ने लाल साहब के बँगले पर कुछ देर बाद उनकी वृद्धा माँ से कहा—"माँ अब तो चलेंगी हम।"

"अभी कैसे जाओगी बिटिया!" मुग्ध-स्वर में वृद्धा ने कहा।

"क्यों माँ ?" हेम ने पूछा।

"क्या पूछती है, न कुछ खाया, न पिया। आज अपने हाथ से भोजन पकाया है बिटिया। पन्द्रह-बीस वर्षों के बाद।" वृद्धा बोली।

प्रेमलता—"तुमने क्यों कष्ट किया माँ ? तुम्हारी इच्छा ही थी, तो रसोइया तो था ही।"

वृद्धा—"रसोइये के हाथ का खाया है, मेरे हाथ का भी खा लो आज।"

हेमलता—"माँ, तुम इसीलिए हमें बैठाकर गायब हो जाया करती थी। क्या-क्या बनाया है माँ ?"

वृद्धा उन्हें पाकशाला में ले गई। आसन बिछा था। थालियाँ लगा दीं। पाक सामग्रियों के प्रकार देख वे विस्मित हो गयीं। इतनी ही देर में, इतनी चीजें और इतनी अच्छी। दोनों बहनों ने कहा—"ऐसा भोजन कभी न किया। ऐसा लगता है मानो तुम्हारा समग्र वात्सल्य, समग्र ममता इसमें ढुलक आई हो।"

भोजन से निवृत्त हो वे लाल के शयनागार में गईं। यही उनका अध्ययनागार भी था। लाल का बँगला बड़ा ही सुन्दर था। उसकी सजावट कुछ राजकीय ढंग से हुई थी। प्रेमलता ने पूछा—"माँ, लाल साहब कब तक लौटेंगे।

वृद्धा बोली—"क्या बताऊँ बेटी, कुछ बताकर जाय तब न। ऐसी चिन्ता में रात-दिन पड़ा रहता है कि खाने-पीने और सोने तक का ध्यान भी नहीं

रखता। जब-जब ऐसे केसों का सुराग लगाना होता है, तब उसे ऐसा ही हो जाता है। लेकिन अब तक ऐसे मामले नहीं आए थे। भोजन करते समय भी यही सब सोचता रहता है। कभी-कभी आधा भोजन छोड़कर उठ जाता है।"

प्रेमलता ने कहा—"इतना मन न लगाते, तो भला ऐसे मामलों का सुराग क्यों कर लगा पाते? फिर भी ऐसा परिश्रम न करना चाहिए कि स्वास्थ्य नष्ट हो जाय।"

"हाँ बेटी, यही तो मैं भी कहती हूँ। आ जाय तो तुम समझा देना।" वृद्धा बोली।

प्रेमलता ने कहा—"मैं अवश्य कहूँगी माँ। लेकिन यह तो बताओ कि अभी तक इस घर में बहू न आई। तुम्हारी सेवा कौन करेगा माँ।"

हेम वृद्धा का मुँह देखने लगी, मानो इस प्रश्न और इसके उत्तर की प्रतीक्षा वह देर से करती रही हो। वृद्धा बोली—"मेरी सेवा की बात छोड़ो बेटी। गृहस्थी देखनी चाहिए। बिना बहू के घर भूतों का डेरा लगता है। घर में बाल-बच्चे होते तो मैं उनकी सेवा करती। बस उसी में मेरी सेवा हो जाती।"

वृद्धा की बातों से हेमलता को बड़ा ही आनन्द हो रहा था। न जाने क्यों उसके मुखमण्डल में लज्जा की लाली दौड़ जाया करती?

प्रेमलता ने कहा—"कुँवर साहब का ब्याह क्यों नहीं कर देतीं माँ?"

वृद्धा—"अभी ब्याह करता ही नहीं, जैसे निरा बच्चा हो।"

प्रेमलता—"क्या कहते हैं?"

वृद्धा—"हंसता है और कहता है—मेरे ब्याह की चिन्ता न करो माँ। क्या अभी मैं बूढ़ा हुआ जाता हूँ? मैं कहती हूं—'तब किसकी चिन्ता करें? बूढ़ा होगा तब ब्याह करेगा? कहता है—ब्याह करूँगा जब मन की बहू मिलेगी। जो तुम्हारी सेवा कर सके। मैं पूछती हूँ—कोई पसन्द भी है तुमको? आएगी तब न मेरी सेवा करेगी? तुम बातें करो न बेटी! देखो क्या कहता है।"

प्रे०—"करूँगी माँ! मुझे विश्वास है लाल साहब ऐसा काम कभी नहीं कर सकते जिससे तुम्हें कष्ट हो।"

वृद्धा—"नहीं बेटी ऐसा नहीं कर सकता। पर मेरी बात को हँसी में उड़ा देता है। ऐसा पितृभक्त और ऐसा मातृभक्त बेटा बिरला ही होगा।"

हेमलता मानो कोई अच्छा उपन्यास सुन रही हो। टेबुल पर पुस्तकों को उलटते-पुलते उसे एक फोटो मिल गई। यह फोटो थी लाल साहब की। यों तो और भी थीं, लेकिन वे दीवार पर थीं और शायद इस कमरे में न थीं। वह फोटो हाथ में ले देखने लगी।

प्रेम ने पूछा—"क्या है री हेम ?"

वह बोली—"फोटो है कुँवर साहब की। बहुत बड़ी अच्छी आई है।"

सब देखने लगीं उसी कुँवर साहब की फोटो जिसे प्रायः नित्य ही देखती थीं। प्रेमलता की आँखें भर आईं। हृदय बाहर निकलने लगा। हेमलता की भी वही दशा हुई। दोनों सिसकने लगीं। वृद्धा ने उन्हें गद्-गद् कराह से आश्वस्त कर पूछा—"क्यों बेटी, एकाएक ऐसा क्यों हो गया।"

प्रे०—"न पूछो माँ, जाने दो, न पूछो।"

वृ०—"विषाद को, आँसुओं को, उद्गारों को भीतर बन्द करना उचित नहीं। उन्हें बाहर आ जाने दो। हमें सब कुछ सहना होगा, भागने से छुटकारा नहीं हो सकता।"

प्रे०—"लाल साहब बिल्कुल उन्हीं की तरह हैं माँ, जैसे सगे भाई हों।"

हे०—"हाँ माँ बिल्कुल वैसे ही, दो रूपों में इससे अधिक सादृश्य नहीं देखा गया है ?"

प्रे०—"याद आ गई !"

सजल नेत्रों से वृद्धा बोली—"आ क्यों न जाय। लेकिन तुम्हें जो क्लेश हो रहा है, न होना चाहिए बेटी।"

प्रे०—"ऐसा क्यों ? मैं पापिनी हूँ।"

वृ०—"कभी नहीं। ऐसा नहीं हो सकता।"

दो क्षण विचारमग्न रह वृद्धा बोली—"हाँ जो सादृश्य की बात कही, वह तुम दोनों बहनों में क्या कम है ? इससे अधिक सादृश्य प्रायः सम्भव नहीं।"

वृद्धा फिर मौन हो गई। हेम ने कुछदेर में पूछा—"माँ क्या सोच रही हो।"

वृद्धा ने कहा—"सोच रही हूँ इस बदली हुई दुनिया को। जहाँ सुनो वहाँ देश सेवा, देश-प्रेम, साम्य और स्वतन्त्रता की बात सुनाई पड़ती हैं। परन्तु

सच्चे सेवक, सच्चे स्वतन्त्रता के पुजारी बिरले ही हैं। न हममें वह त्याग और वीरता रही, न वह पुरुषार्थ। हमारी भुजाओं में वह बल नहीं, हमारी वे तलवारें नहीं कि आततायी और अपहर्त्ताओं का दमन कर सकें। अब हमें केवल चुपचाप मरने का ही एक मार्ग रह गया। हमारे वे दिन बीत गए हम, राजपूत देश के सच्चे सेवक थे, हमारी भुजाओं में बल था, हम त्याग कर सकते थे। लेकिन आज हम सो रहे है। इसी से देश को बिना हाथ-पैर हिलाए मर जाने का ही अविलंबन लेना पड़ता है।"

प्रेम और हेम को यह पता नहीं था कि अल्प-शिक्षित वृद्धा के हृदय में केवल वात्सल्य ही नहीं था, वह देश-प्रेम, विश्वप्रेम एवं राष्ट्रीयता के स्नेह से लबालब था जो नव-देशसेविका, पूर्ण शिक्षिता, नवतरुण-तरुणियों में भी नहीं मिल सकता।

प्रस्तुत विषय समाप्त होने पर वृद्धा ने कहा—"बेटी प्रेम, हेम बिटिया का श्रृंगार तुम नही करतीं। इसमें थोड़ा जी बहला लिया करो, तो बड़ा अच्छा हो।"

प्रे०—"माँ, बहुत कहती हूँ। पर यह श्रृंगार करने ही नहीं देती। मुझसे भी चिन्तित रहती है। फिर भी मुझे समझाया करती है।"

वृ०—"न बिटिया मैं बहू से भी अधिक प्यार तुम्हें करती हूँ। आओ आज अपने हाथों तुम्हारा शृंगार करूँगी।"

हेम ने मुसकराकर कहा—"जाने दो माँ श्रृंगार जाने दो। किसी दूसरे दिन कर लेना।"

वृ०—"और आज क्या हुआ? तू भी कभी-कभी मेरे लाल की तरह बातें किया करती है।"

वृद्धा शृंगार करने लगी। पूर्ण शृंगार कर उसे सुदीर्घ मुकुर के सामने खड़ा कर दिया।

इस वेश-विन्यास में हेमलता को कौन न देखना चाहेगा? दीप्त कान्तमणि को कौन नही देखना चाहता? ऊषा, उर्वशी, शरद, पूनो, बसंत विभा कौन नहीं देखना चाहता?

परन्तु यहा हम अधिक देर ठहर नहीं सकते, शायद लाल साहब भी आ गए। वे जा रही थीं। द्वार पर ही भेंट हो गई।

डंक और विष

०००००००००

लाल कई दिनों से मिस मोरियो के साथ क्लब जा रहे थे। मि० जान की मृत्यु का कुछ सम्बन्ध वे क्लब घर से समझ रहे थे। जासूस कितनी दूर तक देख सकते हैं, यह सभी लोग नहीं समझ पाते। सो भी लाल जैसे जासूस।

मिस मोरियो लाल को गुप्ता की कसौटी पर परख रही थी, उनका सुराग लगा रही थी, जो उनके अभियोग का सुराग लगा रहे थे। वे गुप्ता के कथन से भयभीत थीं। कोई अपराधी भले न हो, लेकिन उसे जब पुलिस अपराधी स्थिर कर देती है, तो वह दण्ड अवश्य ही पा जायगा। क्योंकि यहाँ तो अपराधी पुलिस के प्रमाण की ही दृष्टि से देखे जा सकते हैं।

मोरियो को गुप्ता की ओर से कोई भय न था। नहीं-नहीं, उनसे तो उन्हें अपनी रक्षा का पूरा भरोसा था। यदि लाल को भी वह अपनी ओर कर ले, तो उसे कोई भय न रह जाय। गुप्ता उसे अपनी जांच में निरपराधी प्रमाणित करें और लाल अपराधी स्थिर करें, तो भी वे कुछ खतरे में रहेंगी। लेकिन वे अपने सुराग में परस्पर विरुद्ध परिणाम पर पहुँचें, इसका उन्हें बहुत कम विश्वास था। पर वे अपने को पूर्ण निरापद रखना चाहती थीं।

लाल मिस मोरियो को समझ रहे थे शायद। पर उन्हें अपने गुप्त प्रयास न पूर्ण आशान्वित ही होने देते, न निराश ही।

क्लब में आते-जाते उन्होंने क्लब के अन्यान्य सदस्यों से अब पूछ-ताछ शुरू की। कुछ लोगों से पूछने पर ज्ञात हुआ कि जिस रात मि० जान की मृत्यु हुई, दस बजे के पहले एक बार बिजली लीक कर गई। उसी अँधेरे में ही मि० जान चीख से उठे थे। कहा—"अरे यह क्या हुआ ?" लोगों ने पूछा—"कौन है ? क्या हुआ ?"

मिस मोरियो ने भी पूछा उसी तरह। तय पाया कि किसी

कीड़े ने काट लिया होगा। लाल ने मिस मोरियो से पूछा—"उस दिन आप ने यह बात मुझे न बताई।" उन्होंने कहा—"सचमुच ? अवश्य बताई होगी, मि० लाल।" न बतायी होगी, तो भूल गई हूँगी, या कीड़े का काटना समझ न कही होगी। क्या इससे कुछ लाभ उठा सकेंगे आप ? कुछ सुराग लगे तो बड़ा अच्छा हो।"

लाल ने मोरियो की ओर देखते हुए कहा—"कभी-कभी छोटी बातों से भी बड़ी बातों का पता चल जाता है। समझा न मिस मोरियो। हाँ, यह तो बताइए, जब वे चीखे, तो आप उनके पास थीं ?"

मि० मोरियो—"जी नहीं, मैं कुछ दूर पर थी। जब वे चीखे—चीखे क्या, वैसा चीखना भी वह न था—तो कहा—"अरे यह किसने काटा ?" मैं उनके पास पहुँच गई। पूछा—"किसने काटा ?" वे बोले, 'न जाने क्या था ?' तब तक बिजली का प्रकाश हो गया। देखा तो सचमुच जरा-सा दंशन का चिह्न दीखा। फिर उन्हें वैसा दर्द न हुआ।"

लाल—"यह नहीं बताया कि दंशन स्थान के समीप किसी वस्तु का स्पर्श भी कहीं उनकी गर्दन पर हुआ।

मि०—"इस तरह पूछा ही नहीं। उन्हें तो डंक-सा गड़ा। क्या ऐसे भी विषैले उड़ने वाले कीड़े होते हैं जिनके दंशन से मृत्यु सभव हो।"

ला०—"ऐसा प्रायः सुना तो नहीं गया। हो क्यों नहीं सकते ?"

क्लब से निकल मिस मोरियो और लाल कार पर बैठ घर को चले। कार हरी कोठी के सामने खड़ी हो गई। लाल ने कहा—"आप उतर जायँ।"

मोरियो ने कहा—"आप भी उतर जाइए।"

ला०—"जी नहीं, मुझे शीघ्रता है।"

मि०—"चलिए चाय तो पी लीजिए।"

ला०—"आज क्षमा करें।"

मि०—"मेरे यहाँ चलने में आपको घृणा है।"

ला०—"ऐसा आप क्यों कहती हैं ?"

मि०—"सच कहती हूँ।"

ला०—"तो चलिए, चलता हूँ। आप अप्रसन्न हो गईं।"

दोनों ऊपर गए। मिस मोरियो उन्हें उसी कमरे में ले गई, जहाँ उस दिन मि० गुप्ता थे, जहाँ उन्होंने गुप्ता पर और गुप्ता ने उन पर विजय पाई थी।

चाय पीकर, बातें होने लगी। मोरियो ने कुछ मुस्कुरा कर पूछा—"क्या कुछ सुराग लग रहा है मि० लाल? कभी-कभी तबियत बहुत बेचैन हो जाती है। लेकिन शायद आप तो कुछ बताते ही नहीं।"

ला०—"अभी जब तक किसी नतीजे पर न पहुँच जाऊँ, क्या बताऊँ? अपनी बातें कभी-कभी हम बता भी देते है और नही भी बताते। लेकिन यहाँ तो कोई ऐसी बात नहीं है। आप लोगों से आगे बढ़ने का कोई सूत्र ही नहीं पाते। अँधेरे में भटक रहे हैं, कहीं प्रकाश का क्षीण रंध्र भी नहीं पाते।"

मि०—"मैं तो जो जानती थी बता ही दिया, अब क्या बताऊँ? कुछ समझ में नहीं आता। लाल कोठी और पीली कोठी का कुछ पता चला।"

ला०—"अभी नहीं।"

मि०—"प्रेमलता और हेमलता के बयान से कुछ सुराग लगा?"

ला०—"अभी कुछ नहीं।"

मि०—"क्या आप भी पता न लगा सकेंगे?"

ला०—"न निश्चय पूर्वक हाँ कह सकते हैं, न नहीं। परन्तु हार तो मानी नहीं अभी। अच्छा, अब आज्ञा दीजिए।"

मि०—"बहुत देर हो गई। अब यहीं भोजन कर सो जाइए।"

ला०—'मुझे जाना ही होगा।"

मिस मोरियो की कितनी कुटिल कटाक्षों मधुर, मुसकानों, भाव-भूषित भाव-भंगियों, अलस अंगड़ाइयों तथा वायु के मधुर झकोरों ने उनके साथ गुप्त आग्रह और अनुरोध किया, परन्तु लाल साहब रुक न सके।

हेमलता अपनी कोठी के प्रवेश-द्वार से देख रही थी कि एक कार हरी कोठी के सामने खड़ी है। वह समझ गई कि कार लाल साहब की है। उसे आशा थी कि वे यहाँ अवश्य आएँगे। वह वहीं खड़ी रही।

हरी कोठी से कार रवाना हुई। हेम देखती ही रह गई। वह रुकी नहीं। लाल साहब ने फाटक की ओर देखा। हेम को हाथ उठाया। परन्तु शायद हेम ने न देखा।

आगे के मोड़ पर जाकर कार को लाल ने अपने बँगले की ओर न मोड़कर दूसरी ही ओर मोड़ दिया। कई सड़कों से होती हुई दस-पन्द्रह मिनट में कार एक छोटे से सुन्दर बँगले के सामने जा रुक गई। लाल नीचे उतरे और बँगले में चले गए।

यह बँगला क्या, डाक्टर सिनहा का-चिकित्सालय था। डा० सिनहा भी उस क्लब के सदस्य थे। आज वे क्लब में न जा सके थे।

डाक्टर साहब के पास कुछ लोग बैठे थे। उन्होंने उठकर लाल साहब से हाथ मिलाया और उन्हें बिठाया। पूछा—"इतनी रात को कैसे ?"

लाल—"इधर आया था। सोचा आपके दर्शन करते चलें।"

सिनहा ने हँसकर कहा—"ऐसे देव ऐसे ही दर्शन देने चले आएँ, बड़े भाग्य की बात है।"

अन्य जन एक-एक कर चले गए। अब भीड़ न थी। कमरे में थे बस लाल और सिनहा। शिष्टाचार के पश्चात् पूछा—"कहिए क्या आज्ञा है ?"

लाल—"आप अपने इष्ट-मित्रों को ऐसी-वैसी दवा जो देते हैं, उन्हें भी रजिस्टर में लिख लेते हैं।"

सिनहा—"हाँ, प्राय: ऐसा ही होता है। दवा कुछ कीमती रही तो लिख लेता हूँ, नहीं तो नहीं।"

लाल—"इधर एक महीने के भीतर आपने विष किन-किनको दिए हैं ?"

हँसकर सिनहा ने कहा—"मैं क्यों विष देने लगा किसी को मि० लाल ?" लाल हँस पड़े। वे उनके सामने रजिस्टर रख देखने लगे। लाल ने कुछ नाम नोट किये। परन्तु वह नाम शायद उन्हें न मिला जिस पर सन्देह था। उन्होंने पूछा—"क्यों डाक्टर साहब, हमारे यहाँ भी कोई ऐसा कीड़ा है जिसके काटने से मृत्यु हो सकती है ?"

डाक्टर ने कहा—"हमारे यहाँ तो कोई ऐसा कीड़ा नहीं है। अफ्रीका में ऐसे मच्छर, मक्खियाँ सुनी जाती हैं।"

लाल ने पूछा—"आपके यहाँ मिस मोरियो की दवा होती रही ?"

सिनहा—"कब ?"

लाल—"इसी एक महीने के भीतर।"

सि०—"जी हाँ।"

ला०—"क्या हुआ था ?"

सि०—"एक फोड़ा निकल आया था।"

ला०—"क्या दवा दी थी ?"

सि०—"कई दवाएँ दी गईं थीं। कहिए तो रजिस्टर देख कर बताऊँ।"

ला०—"जी हाँ, देखिए तो।"

सिनहा रजिस्टर खोल उनके सामने ही देखने लगे। कई दवाइयाँ दी गईं थीं। अन्त में किसी विष का प्रयोग हुआ था।

लाल ने पूछा—"फोड़े का क्या हुआ ?"

सि०—"बैठ गया।"

ला०—"इसी आखिरी दवा से !"

सि—"जी हाँ इसीसे। यह विष है।"

ला०—"कैसा विष है ?"

सि०—"बहुत कड़ा।"

ला०—"रोगी जानता था यह विष है ? उसे घर पर लगाने को भी दवा दी गई होगी।"

सि०—"जी हाँ ! और वह जानता क्यों न हो। ऐसी दशा में रोगी को सावधान कर दिया जाता है। शीशी पर भी लिख दिया जाता है। विष जो ठहरा।"

ला०—"इस विष के इन्जेक्शन से प्राण निकल सकते हैं।"

सि०—"अवश्य।"

ला०—"और भोजन-पान के साथ दे दिया जाय तो ?"

सि०—"तो भी।"

कुछ रुककर सिनहा ने कहा—"क्या मि० जान की हत्या मिस मोरियो द्वारा आप समझ रहे हैं ?"

लाल ने कहा—"जी नहीं ! वे ऐसा क्यों करेंगी ? बहुत सम्भव है किसी नौकर ने ऐसा किया हो, या किसी दूसरे ही ने। मिस मोरियो तो बेचारी बहुत

परेशान हैं । उन्हें भी न किसी पर सन्देह है, न कोई कारण ही बतला सकती हैं ।"

सि०—बड़े पेचीदे केस आपके सामने है । आप शायद पता लगा लें, नहीं तो कोई आशा नहीं । सुराग लगा लिया तो आपने सागर के मोती पा लिये, और बहुत बड़े पद पर पहुँच जायँगे ।"

ला०—"इसकी वैसी लालसा नहीं डाक्टर साहब । इनका पता लगाने में मुझे नशा-सा हो जाता है । हम तो यही चाहते हैं विश्व में शान्ति फैले । आप कुछ बताइये, कुछ मेरी सहायता कीजिये ?"

सि०—"भला मैं क्या बता सकता हूँ ? मेरे योग्य कुछ हो, तो मै तैयार हूँ । मुझसे कोई काम आपका निकल सकता है ।"

ला०—"कुछ होगा तो अवश्य कहूँगा ।"

लाल की लाली

पीली कोठी में बैठे लाल साहब समचार पत्र पढ़ रहे थे। प्रेमलता ने कहा—"हेम तू लाल साहब को चाय-वाय पिला, मैं आती हूँ। यहीं रहना, समझी न।"

अच्छा कह वह चाय लाने चली गई। चाय तैयार थी, तुरन्त लेकर लौटीं। शक्कर-दूध मिला जब लाल के आगे प्याला बढ़ाया तो वे किसी कालम का शीर्षक देख रहे थे। हेम ने कहा—"लीजिए साहब।"

उन्होंने कुछ चौंक कर सिर उठाया। प्याला हाथ में लेते हुए बोले—"क्षमा कीजिएगा। मेरा ध्यान इधर था।"

"आपका ध्यान ऐसे ही रहता है," यों कह हेम दीवार की ओर देखने लगी। उसके अरुण-तरुण अधरों पर वह नैसर्गिक मुसकान न खिल रही थी, जो वहाँ स्वत: क्रीड़ा किया करती थी।

लाल ने हेम की ओर देखा और कहा—"क्यों आज आप उदास क्यों हैं! आप न पिएंगी चाय क्या?"

हेम०—"उदास तो नहीं हूँ। चाय पीने को जी नहीं चाहता।"

लाल—"उदास नहीं हैं। वाह, न वह हँसी, न वह प्रफुल्लता।"

क्या कहा आपने—"साहब! आपका ध्यान मेरी शिकायत का फायदा उठा रहा हैं। जबरदस्त चोर सेंध भी लगाता है।"

हेम के अधरों की मुस्कान लौट आई। वह कौंध गई। लाल ने कहा—"अच्छा पहले चाय की बात रही। आप न पिएँगी तो मेरे लिए क्यों कष्ट किया? मैं भी न पिऊँगा।"

हे०—"आप क्यों न पिएँगे? यह अच्छा रहा। सबको साथ ही भूख-प्यास तो लगती नहीं।"

ला०—"मेरा भी जी नहीं चाहता।"

हे०—"अच्छा बिना जी चाहे ही पीती हूँ। पाहुनों को रुठने कैसे दिया जाय।"

ला०—"अच्छा यह तो बताइए, उस दिन जब आप फाटक पर खड़ी थीं, मैंने नमस्कार किया परन्तु आपने कोई स्वीकृति न सूचित की।"

हे०—"पुलिस की चालाकी यहाँ भी।"

ला०—"सच कहता हूँ देवी जी।"

हे०—"आप आए क्यों नहीं।"

ला०—"समय नहीं था।"

हे०—"मिस मोरियो का केस भी तो साधारण नहीं।"

ला०—"लेकिन आपके सामने तो साधारण ही है। आपका क्या ख्याल है?"

एक कहकहा-सा गूंज उठा। लाल ने फिर कहा—"आने पर आप मिलती तो नहीं। उस दिन गुप्ता जी के साथ से न जाने कब लौटीं।"

प्रेमलता आ गई। एक कुर्सी पर बैटते हुए कहा—"लाल साहब, आप बहुत परिश्रम करते हैं। कहीं आपका स्वास्थ्य न क्षीण हो जाय। सदैव व्यस्त रहते हैं।"

ला०—"क्या करूं देवी जी, ऐसे काम ही आ जाते हैं। फिर भी स्वास्थ्य का मैं पूरा ध्यान रखता हूँ।

प्रे०—"पर आप माँ को अप्रसन्न रखते हैं, यह अच्छा नहीं।"

हेम किसी काम से या वैसे ही दरवाजे के बाहर चली गई। पर उसके कान इधर ही थे।

लाल ने पूछा—"माँ मुझसे क्यों अप्रसन्न हैं? इसीलिए न कि मैं मन दो मन, चार मन नहीं खा जाता।"

कुछ हँसकर प्रेम ने कहा—"नहीं नहीं, और बातें हैं लाल साहब। आपके घर में कोई बहू नहीं, कोई बाल-बच्चा नहीं। आप अपना ब्याह क्यों नहीं कर लेते, माँ का कौन ठिकाना। वह तो देख लेतीं। क्या आप माता का हृदय नहीं जानते? क्या जानें, आप तो अभी पिता का भी हृदय नहीं जानते?"

लाल ने मन में सोचा—"इस सती का कैसा हृदय है जो अपनी विषम

दशा में भी दूसरों के सुख पर इतना ध्यान रखती हैं, अपने आँसुओं और आहों को भी दूसरों के मनोरंजन मधूच्छवासों में ही सार्थक समझती है।"

उन्होंने व्यक्त कहा—"माँ सचमुच अप्रसन्न है ? मैं तो चाहता हूँ कि बहू जो हो वह माँ को प्रसन्न रक्खे, उनकी सेवा करे।"

प्रे०—"तो क्या ऐसी बहू मिलती ही नहीं ?"

ला०—"क्या बताऊँ ढूढ़ा हो तब तो।"

प्रे०—"अच्छा मैं ढूंढ़ लाऊँगी। तो ब्याह कर लेगे न ?"

ला०—"आपकी आज्ञा नही टालूंगा ?"

प्रे०—"तो···।"

ला०—"इन केसों का सुराग लगा लूँ तो फिर···।"

प्रे०—"सुराग न लगे तो व्याह न करें।"

लाल ने हँसकर कहा—"नही मेरा मतलब यही नहीं है।"

लाल की माँ भी आ गई। उनके साथ एक सुन्दरी और एक बालिका भी थी—श्रीमती बोस और उनकी पुत्री। हेम ने उन्हें आदर पूर्वक बिठाया।

लाल ने श्रीमती बोस से कहा—"इधर मै कई दिनों से आपके यहाँ न आ सका। लेकिन माँ से कह गया था। यहाँ से होकर अभी आता। क्या करूँ, बहुत परेशान हूँ।"

वृद्धा ने लाल कोठी और पीली कोठी का परिचय इसके पूर्व ही करा दिया था। प्रेमलता श्रीमती बोस से बहुत-सी बातें करती रही। हेमलता छोटी बच्ची से खेल रही थी।

कुछ देर बाद प्रेम ने वृद्धा से कहा—"माँ, अब कुंवर साहब तुम्हें न चिढ़ाएँगे। उनसे मैंने प्रतिज्ञा करा ली है।"

इतने ही में समाचार मिला—"लाल साहब को साहब बुला रहे है।"

वे तुरन्त नीचे आए और सीधे साहब के बँगले पर रवाना हो गए।

वहाँ पहुँचे तो साहब कोई जरूरी कागज देख रहे थे। लाल ने अभिवादन किया।

साहब ने उन्हें प्यार से बिठाया। पूछा—कहो लाल क्या करते रहे ?"

लाल०—"अभी क्या बताऊँ ?"

साहब—"तुम अभी सब कुछ गुप्त रखना चाहते हो। सफलता की आशा दीख रही है। परिणाम के आकस्मिक उद्घाटन से लोगों को आश्चर्य-चकित कर देना चाहते हो।"

ला०—"अभी मैं आशा नहीं बँधा सकता।"

सा०—"हाँ, मैंने और भी बातें सुनी हैं।"

ला०—"क्या ?"

सा०—"कुछ लोगों का कहना है कि तुम निहित व्यक्तियों के परिवार से अनुपयुक्त सम्बन्ध जोड़कर सुराग लगाने में ढील दे रहे हो। सही सुराग लगाने के रास्ते से दूर हट रहे हो।"

ला०—"उनके परिवार से सम्बन्ध जोड़ लेने पर मेरी सहानुभूति उनके साथ और घनी हो जायगी। फिर सुराग में और दत्त चित्त हूँगा, या ढीला पड़ूँगा ? अपराधियों से मेरी अधिक घनिष्टता हो तो मेरे प्रति आशंका भी हो सकती है। जैसे मैं पुलिस कर्मचारी हूँ, वैसे ही एक स्वतन्त्र व्यक्ति भी हूँ, समाज का एक सदस्य भी हूँ, मानव जाति का एक उदार मानव भी हूँ, जंगल का एक प्राणी भी हूँ यथा समय मैं सबका कर्त्तव्य करता रहूँगा। यदि मेरा यह आचरण पुलिस विभाग या राजनीति के विरुद्ध समझा जाय, तो मेरा त्याग-पत्र ले लीजिए। आप जानते हैं देश तथा प्राणिमात्र की सेवा के लिए ही मैं कांग्रेस में जाना चाहता था। यह आपका आदेश, आपकी कृपा थी कि मैं यहाँ आया। आप ने कहा था—'यदि तुम इस विभाग में एक सच्चे पुलिस कर्मचारी की तरह अपना कर्त्तव्य करते रहोगे, तो देश तथा जाति की सेवा कांग्रेस के किसी भी सदस्य की अपेक्षा अधिक कर सकोगे। यह पुलिस विभाग बहुत बिगड़ चला है। तुम जैसे कर्मचारी इसकी बुराइयाँ दूर करेंगे। लोगों के सामने सुन्दर उदाहरण रक्खोगे।' आपकी बात मुझे अच्छी लगी और आप सरीखे कर्मचारी के निर्देश में काम करने में मेरा उत्साह भी बढ़ा।"

सा०—"तुम राजपूत हो, राज-वंशज हो। तुम्हारा गौरव, आत्म-सम्मान और देश-प्रेम मैं जानता हूँ। जब इन पर ठेस लगेगी तो तुम सहन नहीं कर सकते। लेकिन मि० लाल, क्या तुम यह नहीं जानते कि, अंग्रेज होते हुए भी तुम्हारी जाति, तुम्हारे देश के प्रति मुझमें कितनी श्रद्धा, कितना प्रेम है ? इस विषय में

मेरा हृदय वही है जो प्रख्यात इतिहासकार श्री कर्नल टाड का था, और शायद यह न जानते होंगे, मैं उन्हीं की वंश-शाखा में भी हूँ।"

लाल ने कुछ विस्मित हो हर्षोत्फुल मुद्रा से कहा—"सब कुछ जानता हूँ, यह वंश-परिचय नहीं। आज इसे जान मेरे हर्ष और उल्लास की सीमा नहीं।"

साहब ने फिर कहा—"तुम जानते हो, तुम मेरे दाहिने हाथ ही नहीं, अपितु इस विभाग की तीव्र आँखें और इसके पापों के प्रायश्चित्त भी हो।"

लाल ने विनीत हो कहा—"यह आपकी कृपा और आपका स्नेह है और कुछ नहीं।"

साहब बोले—"मनुष्य को, विशेषतः उन्हें जो तुमसे विश्व, देश तथा जाति के उजाला होंगे, सदैव सावधान रहना चाहिए, जिससे साधारण प्रलोभन उन्हें नीचे न घसीट लें। इसीलिए जो कुछ सुना, तुमसे कह दिया। तुम शायद नीचे गिरो, तो मैं तुम्हें अपनी ओर से क्षमा न करूँगा।"

"वह क्षमा आप की अक्षमा होगी।"

फिर उनमें कुछ गुप्त बातें हुईं।

गुप्ता के बँगले पर

लाल देर तक गुप्ता के बँगले पर बैठे रहे। जिस दिन गुप्ता ने उस निर्जन मकान में हेमलता के साथ अपनी दुष्कामना प्रकट की थी, उसके बाद लाल से उनकी आज ही भेंट हुई थी। हेम ने उस दिन का वृत्त उनसे प्रकट कर दिया था या नहीं, इसका वे कोई निश्चय न कर सके। यद्यपि उनकी पिस्तौल दरवाजे के पास रक्खी मिली, परन्तु हेम ने उन्हें सचमुच क्षमा दे दी, उनकी कुश्चेष्टा किसी से प्रकट न की, इसका वे पूर्ण निश्चय न कर सके।

पहले तो उन्हें बहुत भय था। पर पिस्तौल मिल जाने से वह दूर हो गया था, क्योंकि अब वह बात साहब के यहाँ तक सप्रमाण नहीं जा सकती थी। अब तो उन्हें केवल लज्जा रह गई थी। लाल के सामने वे झेंप से रहे थे। लाल की बातों से, मुद्राओं से उसका पता लगा लें, उस अवस्था में जब वे उसको व्यक्त न करना चाहते हों, इसका उन्हें विश्वास न था। ऐसा ही हुआ भी वे कुछ निश्चय न कर सके।

ज्यों-ज्यों उनमें बातें होती गईं, त्यों-त्यों उनका असमंजस दूर होता गया। उन्होंने पूछा—"क्यों, कुछ पता चला ?"

लाल ने कहा—"नहीं भई, अभी तक तो कुछ नहीं। कुछ बताओ ! तुमने कुछ किया ?"

गुप्ता—"मैने अब तक कुछ नहीं किया ? तुम्हारे इतना परिश्रम भी तो मेरा किया नहीं होता। सच कहता हूँ लाल, कोई रास्ता अब तक न मिल पाया। दो बातों पर ध्यान दिया ही होगा।"

लाल—"क्या ?"

गु०—"मि० जान के विषय में जो मिस मोरियो ने कहा है कि कभी-कभी उनके हृदय की धड़कन बढ़ जाया करती थी। दूसरी बात कि शायद किसी कीड़े ने

उन्हें काठा हो, क्योंकि उन्हें डंक चुभने जैसा लगा। डाक्टर ने भी शव की परीक्षा कर कहा है कि उनके शरीर में विष के प्रभाव व्यक्त थे। वह किसी विषैले कीड़े का भी विष हो सकता है। किसी विषैले जन्तु के विष या अन्य विष का जब प्रभाव शरीर में होता है तो उनमें डाक्टर कोई अन्तर नहीं बता पाते।"

ला०—"ये दोनों कारण मि० जान की मृत्यु के लिए पर्याप्त हो सकते हैं। लेकिन ऐसे उड़ने वाले कीड़े हमारे यहाँ सुने या देखे नहीं गए कभी।"

गु०—"कितनी बातें ऐसी हो रही हैं, जो हमारे जीवन के इतिहास में नवीन हैं।

ला०—"सो तो सही है गुप्ता! तुम जो कह रहे हो, बहुत संभव है। मैं इधर कम आकृष्ट नहीं हूँ। दूसरा कोई कारण न मिलने पर हमें इसे मान ही लेना पड़ेगा। मानना यथार्थ भी होगा। अच्छा कुँवर अजीत सिंह की हत्या के विषय में तुम क्या सोचते हो?"

गु०—"कुछ समझ में नहीं आता। मुझे तो घूम-घाम कर आत्म-हत्या पर आ जाना पड़ता है। परन्तु इसके लिए पर्याप्त कारण नहीं मिलता।"

ला०—"यही तो! हाँ, एक बात सुनी है तुमने? बड़े कुतूहल की बात है।"

गु०—"वह क्या?"

ला०—"कहा जाता है कि जहाँ ये कोठियाँ हैं, पहले किसी साकलदीप धनी ब्राह्मण की हवेली थी। उनकी किसी बड़े सेठ से बहुत लड़ाई चल रही थी। वे जीत गए, सेठजी हार गए। शत्रुता ने भीषण रूप धारण किया। उन्होंने ब्राह्मण की हवेली पर डाका डलवा दिया। सब कुछ लूट-पाट कोठी में आग लग दी। कोई भागने न पाया। ब्रह्म-हत्या के पाप ने उनका सर्वस्व स्वाह कर दिया। एक-एक कर सबको खा डाला। उनके घर का एक पुतला, और ताँबे का पैसा भी न बचा। कोठी गिर कर धूल में मिल गई। तब से यहाँ किसी ने भय के मारे मकान बनाने का साहस न किया। उन्हीं प्रेतात्माओं ने, उन्हीं भूतों ने यह सब कुछ किया है, और ऐसे ही एक-एक-कर सब को मार डालेंगे। म्युनिसिपैलिटी ने कठिन आदेश निकाल दिया था कि जो यह दुःसंवाद फैलाएगा वह दण्डित होगा, इसीसे जब बहुत दिनों बाद यह बात दब गई, तो ये कोठियाँ बनीं।"

गुप्ता ने एक लम्बी साँस ली। लाल ने पूछा—"तुम्हारा क्या विश्वास है इन सब बातों पर?"

गुप्ता ने कुछ गम्भीर एवं कुछ आस्थापूर्ण शब्दों में कहा—"मैं तो न विश्वास ही कर पाता हूँ, न अविश्वास ही। तुम तो मेरी इन बातों पर हँसोगे। तुम्हारा अपना क्या विश्वास है ?"

लाल बोले—"मैं तो वैसा विश्वास नहीं करता। प्रेत योनि मान लेता हूँ, लेकिन यह कि वे भूतों की भयानक आकृतियों में पिस्तौल से फायर करेंगे, तलवार, कटार चलाएँगे इस पर मैं विश्वास नहीं कर पाता। अपने कर्मों का फल तो मिलेगा ही, जो कुछ हो रहा है वह कर्मों की ही प्रतिक्रिया है। इस भूमि पर बसने वाले ने क्या पाप किया है कि वे प्रेतात्माएँ सर्वव्यापिनी सत्ता से प्रेरित हो ऐसा संहार करें ? यदि उनके कर्मों की प्रतिक्रिया स्वरूप उन्हें मरना ही होता तो वे कहीं भी मर सकते थे। परन्तु विशेष-जनमत इन बातों को मानने ही की ओर है।"

गुप्ता कुछ कहने ही जा रहे थे कि मिस मोरियो आ गई। मुद्रा में तो उदासीनता की झलक थी कुछ, लेकिन बड़े ठाट-बाट में थी। अभी-अभी का शृंगार किया था। सारा कमरा वालेटाइल सेंट से भर गया। मानों उन्मत्त बसंत-वायु का सरस झोंका प्रविष्ट हो आया हो।

प्रेमी के निधन पर किसी भारतीय विरह-विधुरा का यह वेश-विन्यास तो बहुत अखरता, परन्तु मिस मोरियो में वह जरा-सा खटक कर रह जाता।

मिस मोरियो ने सादर दिए हुए आसन को ग्रहण करते हुए कहा—"मेरे आने से आप लोगों को कुछ विघ्न अवश्य पड़ा। कोई वैसी बात हो तो मैं उधर चली जाऊँ।"

लाल ने कहा—"आप विराजिए। आप के आने से कोई विघ्न हुआ नहीं। आपसे हमें सुविधा मिलेगी या विघ्न ? अच्छा, मि० गुप्ता, मुझे तो अब आज्ञा दीजिए।"

मिस मोरियो ने थोड़ा मुस्कुरा कर कहा—"लीजिए, मेरे आते ही आप चले। सही कहा था न मैंने।"

"नहीं-नहीं मिस साहबा, ऐसी बात नहीं। मैं बहुत देर से यहाँ हूँ।" लाल यों कह नमस्ते कर चलने लगे। द्वार लाँघा ही होगा कि गुप्ता ने कहा—"अब जरा सुनते जाइएगा मि० लाल। मैं तो भूल ही गया एक बात।"

वे मुड़ गए और पूछा—"क्या भूल गए ?"

गुप्ता बोले—"लाल, पीली कोठियों की घटनाएँ एक साथ घटित हुई। सम्भवत: हरी कोठी की घटना भी साथ ही घटी हो। इस पर विचार किया होगा।"

"यही बात इन घटनाओं का अनुसंधान और भी दुरूह बना देती है। इससे अनुमान होता है कि यह काम एक ही का, या एक ही सचालक का है। यह भी असंभव नही कि संयोग वशात् भिन्न-भिन्न व्यक्तियों से एक ही समय में घटनाएँ घटित हुई हों। यही सब उलझन है। हम लोग फिर इस पर विचार करेंगे।"

यों कह लाल रवाना हो गए। गुप्ता ने एक हलकी अँगड़ाई ले मिस मोरियो के कंधे पर हाथ रख दिया। अपनी ओर झुकने का जरा-सा इशारा किया। मोरियो के मुख-मण्डल में लाली दौड़ी, मुस्कुराहट खिली और वह प्रफुल्ल मधु परिपूर्ण आनन्द गुप्ता की ओर झुक गया। ललकित मधुपाधर मधुर कपोल दलों में उलझ गए।

काली-काली घटाएँ

कोर्ट इन्सपेक्टर के दफ्तर में लाल और गुप्ता साथ ही पहुँचे थे। कोर्ट साहब कह रहे थे—"भई, केस तो बड़े पेचीदे हैं, लेकिन हैं दिलचस्प।"

लाल ने कहा—"क्या खास दिलचस्पी उनमें समझ रहे हैं आप ?"

कोर्ट साहब ने कुछ हँसकर कहा—"मि० गुप्ता आप ही बतायें इसमें क्या खास बात है ?"

गुप्ता—"आप तो जानते ही हैं कि किसी केस की पेचीदगी ही उसकी दिलचस्पी होती है मि० लाल को।"

कोर्ट साहब—"और आपको नहीं ?"

गुप्ता—"अरे मेरी बात का क्या है, कोर्ट साहब ?"

ला०—"अच्छा कोर्ट साहब आप अपनी खँझड़ी हमें दे देते और हमार आप ले लेते, थोड़े दिनों के लिए।"

को०—"सच कहते हैं मि० लाल ? इसीलिए कहते हैं शायद कि मैं आपकी खँझड़ी बजा नहीं सकूँगा ठीक से, मेरा अनुमान है इस अनुसन्धान में आप लोग सफल हुए तो भविष्य आप लोगों को बहुत बड़ा पुरुस्कार देगा।"

आकाश काले-काले बादलों से घिरने लगा। थोड़ी ही देर में अन्धकार-सा हो गया। वायु भी शीतल हो गयी। अनुमान हुआ कि कहीं पानी बरसा है। क्योंकि रिमझिम करती हुई नील नीरद मालाओं के सरस अंचल को स्पर्श किए बिना वायु में ऐसी सरस शीतलता संभव नहीं।

अन्धकार के कारण कमरे में बिजली का प्रकाश करना पड़ा। उसी समय एक कार आकर दफ्तर के सामने रुक गई। लोग जो अपने कागजों से आँखें उठा प्रकृति की अभिराम शोभा देख रहे थे, उस कार को देखने लगे। कार में कोई ऐसा सौंदर्य नहीं था। हाँ, उसमें जो था, वह शायद उन श्याम घटाओं से

भी सुन्दर था। अभी उन घटाओं में न बिजली कौंधी, न इन्द्र धनुष की आभा जगमगाई, न उड़ती हुई धवल बक-पंक्तियाँ ही दिखलाई दीं।

परन्तु यह सब और इससे भी अधिक देखना हो तो कार में देखिए। उसमें केवल हेम है, अपने साधारण वेश में। उसके केश और परिधेय सावधान रहने पर भी हवाओं से उड़-उड़ लहरा उठते हैं।

वह कार से उतर दफ्तर की ओर चली। द्वार पर से पूछा—"मैं अन्दर आ सकती हूँ।" तब तक लाल ने उठ आगे बढ़कर कहा—"आपने कैसे कष्ट किया?"

सभी लोग खड़े हो गए। हेम सबके साथ एक कुर्सी पर बैठ गई। उस कमरे में ऐसा प्रकाश कभी न हुआ था। विचित्र जगमगाहट आ गई।

कोर्ट साहब ने लाल से पूछा—"आपका शुभ परिचय?"

लाल ने कहा—"आप श्रीमती कुँवर अजीतसिंह की छोटी बहन हैं।" इतना कह कर लाल हेम की ओर देख अपना प्रश्न दुहराने ही जा रहे थे कि उसने कहा—"लाल साहब, मैं आपके बँगले से आ रही हूँ।"

लाल—"आपको बड़ा कष्ट हुआ। कहिए क्या आदेश है।"

हेम—"कुछ काम है, दीदी ने बुलाया है।"

लाल—"घटा घिर आई है। पानी बरसता ही चाहता है। देख लें तो चलें।"

हेम०—"बरसने दीजिए न पानी। आप चलिए।"

लाल साहब उठे और उसी कार में बैठ हेम के साथ रवाना हो गए। लोग देखते रहे, सोचते रहे। गुप्ता का हाल बुरा था। वे जल रहे थे। वे हेम को आमने-सामने देख न सके। वे भूत-भय से आतंकित थे। उन्होंने यह भी देखा कि उस सुन्दरी की मुद्रा में तुच्छ घृणा, तुच्छ स्वार्थपरता, तुच्छ वासनाओं, तुच्छ राग-द्वेष की छाया भी न थी। उन्होंने जब उसे देखा, तब कुछ-न-कुछ नवीनता पाई। वे ही नहीं यह बात प्रत्येक दर्शक के विषय में सत्य थी। वह प्रतिक्षण नवीन थी, प्रतिक्षण उसके रूप-यौवन एवं शील-सौंदर्य में कुछ-न-कुछ विकास अवश्य मिलता।

हेम ने कहा—"लाल साहब, सीधे मकान न चलिए। मोहन पार्क और रामघाट से घूमते हुए चलिए।"

"जो आज्ञा ?" लाल ने कहा ।

हेम ने मुस्कराते हुए कहा—"आप तो ऐसा कहते हैं, मानो मैं आपके ऊपर कोई बहुत बड़ा अफसर हूँ।"

"हैं न और क्या ? आप मेरे स्वामी नहीं, बड़े कर्मचारी नहीं तो और कौन ?"

"कौन है ? नीचे के कर्मचारी होते हुए भी आप ऊपर के ही माने जाते हैं। हुकूमत तो आपकी ही रहती है।"

लज्जा और झेंप से भरी हँसी, हेम के आनन पर फैल गई। मधुर निषेध से बोल उठी—"चुप रहिए चुप।"

हेम की साड़ी का छोर लहरा कर लाल की पुलिस-वर्दी पर जा पड़ा और उनके चेहरे को भी ढक लिया। हेम सावधानी के साथ उसे समेटने लगी। लाल ने कहा—"यह क्या करने लगीं आप ? इस आंचल का नकाब रहते हुए भी मैं कार निर्विघ्न चलाता रहूँगा। इसे मेरे शरीर पर से न समेटिए। बासन्ती वायु एवं कादंबिनी के सरस अंचल से समीर के कितने सुमधुर झोंके आए होंगे, परन्तु किसी ने मुझे इतना सुख न दिया, किसी ने जीवन को इस तरह स्पर्श न किया।"

हेम ने मन्द मुस्कराते हुए कहा—"आप तो कविता करने लगे।"

लाल०—"कविता मेरे समीप बैठी है, मेरे हृदय में मुस्कुरा रही है, तो मेरे मुख से जो शब्द निकलें उनके कविता हो जाने में क्या आश्चर्य है ?"

हेम०—"इसे इस तरह रहने देने में मुझे लज्जा लगती है।"

लाल—"लेकिन इसे यों ही रहने दीजिए। यह शालीनता तो आपके सौंदर्य की सुरभि है।"

हेम—"आप मुझसे परिहास करते हैं क्या लाल साहब ?"

लाल—"भक्त इष्टदेव की आराधना करता है, भ्रमर कमल क्रोड़ में छिप रहता है, रश्मि-मालाएँ लहरों के अंचल में लोट-पोट हो जाती हैं—क्या यह सब परिहास है श्रीमती जी ?"

हेम—"देखिए ये काली-काली घटाएँ और ये ठंडी-ठंडी हवाएँ कितनी अच्छी लग रहीं हैं ?"

लाल—"बहुत अच्छी, बहुत अच्छी ! परन्तु वैसी तो नहीं जैसी आप। सच कहता हूँ।"

हेम—"भला आपने कभी झूठ भी कहा है ?"

लाल—"जी हाँ, जब मै आपके सपने देखा करता हू, और लोग मुझे अन-मना देख, पूछते है—क्या देखा, तो कुछ अट-सट कह देता हूँ। झूठ हुआ न ?"

हेम—"आप मेरे सपने क्यों देखते है ?"

लाल—"प्रातःकाल कुसुम दलों पर ओस की बूंदें क्यों छहराती है ? ऊषा-रश्मियों के छूते ही कमल की पँखुरियाँ क्यों खिल जाती हैं ? सुधाकर की सुस्मिति में कुमुदिनी क्यो विहँस जाती है। चुँबक के पीछे लोहा क्यो लगा रहता है ? घटाओं को देख मोर क्यों नाच उठते है……?"

हेम—"वाह रे कवि जी !"

लाल—"वाह रे कविता रानी !"

हेम कहकहा मार उठी। लाल भी हँस पड़े। लाल ने कहा—'आप हमें ये काली घटाएँ क्या दिखाती है ? अरे ये तो इस हृदय पर छा जाया करती है।"

हेम—"वह कैसे ?"

लाल—"जब-जब आपसे दूर रहता हूँ, तब-तब ये घिर जाया करती है। अच्छा अब आप मोहन पार्क मे आ गई। अब क्या आज्ञा है ? सामने रामघाट भी है।"

हेम—"अब मेरी प्रार्थना है कि आप कार से उतर जाइए।"

"जो आज्ञा", कह लाल कार से उतर गए। हेम भी उतर गई। मौलसिरी के नीचे बेंच पर बैठते हुए हेम ने कहा—"विराजिए यहाँ।"

बैठते हुए लाल ने कहा—"आप जरा-सा कष्ट करें।"

हेम—"वह क्या ?"

लाल—"यह वर्दी बिछा दूँ, आप उसी पर बैठें।"

हेम—"रहने दीजिए। मैं अपनी साडी बिछा दूँ आपके नीचे।"

लाल—"नहीं-नहीं आपको सचमुच कष्ट होगा। अच्छा हो आप मेरी जांघों पर बैठ जायँ।"

हेम ने सलज्ज मुसकान एवं कुछ विचित्र भाव-भंगी से कहा—"अब आप

से न बोलूंगी ।"

"खूब कहा। मेरे हृदय पर तो आप आसन जमाकर बैठ गईं, और यहाँ बैठने में मुझसे बोलना छोड़ देंगी ।" लाल ने मुस्कराते हुए कहा।

दोनों बैठ गए। बातें होने लगीं। हेम ने कहा—"मैं ये काली-काली घटाएँ होती तो ।"

लाल—"मैं उनकी नन्हीं बूंदें होता और होता इन बगुलों की कतारें, जो उस स्निग्ध-वृक्ष पर मोती की लड़ियों-सा झूला करता है ।"

हेम—"मैं होती ये ठंडी-ठंडी हवाएँ ।"

लाल—"मैं होता उनकी मृदुल हिलोरें ।"

हेम०—"मैं होती कोयल ।"

लाल—"मैं होता उसकी काकली ।"

हेम०—"मैं होती पपीहा ।"

लाल—"मैं होता पिय कहाँ ?"

हेम०—"मैं होती खुफिया इंस्पेक्टर ।"

लाल—"मैं होता···।"

हेम हँस पड़ी। लाल ने कहा—"आपकी जीत तो है ही और होगा ही। लेकिन अब बुंदियाँ छूटना ही चाहती हैं। आइए भाग चलें ।"

हेम ने कहा—"बुंदियों से क्यों डरते हैं इतना ? आज हम इनमें नहाएँगे ।"

लाल बोले—"क्यों, क्या मुझे कभी आँसुओं में नहाना होगा ? इसी का अभ्यास आप कराने जा रही हैं ?"

हेम ने अपना हाथ लाल के कँधे पर रखते हुए कहा—"ऐसा क्यों कहते हैं ?"

"न कहूँ क्या ?"

"नहीं ।"

बूंदें पड़ने लगीं लेकिन वे बैठे रहे। थोड़ी ही देर में वे शराबोर हो गए। लाल ने कहा—"आइए आपका मुँह पोंछ दूं ।"

लाल अपने रूमाल से हेम का मुँह पोंछने लगे। हेम ने कहा—"रहने दीजिए। गीले रूमाल से आप मेरा मुँह पोंछ रहे हैं। खुफिया वालों से मुझे डर लगा रहता है। घर में उनका आना अच्छा नहीं ।"

लाल ने कहा—"शरीर में चिपकी हुई इस गीली साड़ी में कितनी अच्छी लगती हैं आप।"

हेम—"और आप इस गीली पुलिस वर्दी में नहीं?"

लाल—"ओह आप तो गाँगू तेली की तुलना राजा भोज से करने लगीं। अरे कहाँ इस काली-काली अलकों से टपटप चूती हुई बूँदें, ये धुले हुए अंजन। ओस बिन्दुओं से धुले हुए ये कमल-लोचन, और ये गोले······।"

बात काटकर हेम ने कहा—"आज आप मुझे बहुत चिढ़ा रहे हैं, बहन से कह दूँगी और इसका बदला लिए बिना छोड़ूँगी नहीं।"

जासूसी चिट्ठी

आज मिस मोरियो को क्लब से लौटकर चिट्ठी मिली। खुले हुए लिफाफे पर लिखा हुआ था, श्रीमती मिस मोरियो। भीतर एक पत्र था। उसमें लिखा था—श्रीमती जी,

पुलिस जान गई है कि आपका दान-पत्र जाली है। उसने यह भी पता लगा लिया है कि आपने ही मि० जान की हत्या की है। आपने डाक्टर सिनहा के यहाँ से विष लिया है, यह भी वह जान गई है। यद्यपि सिनहा ने यह जानकर विष नहीं दिया कि वह किसी को दिया जायगा। उन्होंने तो आपके फोड़े पर लगाने को दिया था।

आपके लिए यही रास्ता है कि आप डाक्टर सिनहा और उस दान-पत्र के लिखने वाले को अपनी ओर कर लें इसमें आप शीघ्रता करें। खतरा सिर पर है। मैं आपके हितैषियों में हूँ, क्लब का एक सदस्य हूँ, पुलिस की बात ठहरी अभी अपने को प्रकट न करूँगा। आप होशियार हो जायँ।

चिट्ठी पढ़ कर मोरियो का रंग उड़ गया। उसका हृदय धड़कने लगा। ऐसा लगा मानो वह पुलिस से घिरी हो। यह कौन है, सचमुच ही मेरा हितैषी है। गुप्ता को पत्र दिखाए बिना काम न चलेगा। लेकिन क्या गुप्ता को दिखा देना अच्छा है? यह सब लाल का अनुमान है। अनुमान ही हो, लेकिन उससे अपनी रक्षा तो करनी चाहिए। लेकिन मैं अपनी रक्षा कर ही कैसे सकूँगी। गुप्ता मेरे विरुद्ध कभी नहीं हो सकते। परन्तु उन्हें यह चिट्ठी दिखाऊँगी, तो वे निश्चय ही मुझे हत्यारिनी समझने लगेंगे।

यह चिट्ठी लाल ने मिस मोरियो के कमरे में रखवाई थी। अब वे बड़े जोर से सुराग में लग गए थे। इससे वे क्या लाभ उठाते, इसे तो वे ही जानें। अब उनके बहुत से आदमी बहुत से स्थानों पर नियुक्त थे। एक तो था लड़का

जो डाक्टर सिनहा के यहाँ काम करने लगा था। देखने में बुद्धू लेकिन बड़ा ही होशियार था। लाल के ऐसे बहुतेरे बुद्धू थे।

मिस मोरियो डाक्टर सिनहा के यहाँ आने-जाने लगी थी। एक दिन उन्होंने डाक्टर साहब से पूछा—"आपके यहाँ कभी लाल साहब आए थे ?"

सिनहा—"जी हाँ, आए थे।"

मोरियो—"क्या पूछ रहे थे आपसे ?"

सि०—"दवाओं का रजिस्टर देख रहे थे। वे जानना चाहते थे कि एक महीने के अन्दर किस-किसको विष दिया गया था। आपका नाम देखा और विष का नाम नोट किया, जो आपके फोड़े पर लगाने को दिया गया था।"

मो०—"इससे क्या मतलब था उनका ?"

सि०—"मतलब यह था कि शायद वही विष किसी नौकर ने मि० जान को न दे दिया हो।"

मो०—"वे मुझ पर भी संदेह करते रहे हैं ?"

सि०—"जी नहीं ! मैंने पूछा भी था। उन्होंने कहा—'बेचारी मोरियो तो बहुत परेशान हैं।"

मो०—"देखिये, मेरा तो सब कुछ लुट गया और ऊपर से यह इनाम ! अभी पुलिस ने मेरी संपत्ति पर मेरा अधिकार भी न होने दिया।"

सि०—"खैर, वह तो आपको मिलेगी ही। कोई क्षति नहीं हो सकती।"

मो०—"पुलिस की कौन कहे ? न जाने क्या से क्या कर देती है। सच का झूठ और झूठ का सच बनाती रहती है।"

सि०—"लेकिन इसमें मि० लाल हैं। वे तो कभी ऐसा होने न देंगे। आप उन्हें जानती नहीं ?"

मो०—"मैं तो यही जानती हूँ कि वे एक दक्ष खुफिया इन्सपेक्टर हैं।"

सि०—"ओह ! अरे क्या आप नहीं जानतीं कि मि० लाल न ने जानें कितने थानेदारों, सिपाहियों और इन्स्पेक्टरों को काम से अलग करा दिया है और उन्हें दण्ड भी दिला चुके हैं ? न एक पैसा घस लेना, न लेने देना, न झूठा अभियोग चलाना, न चलाने देना। अपनी सचाई के ही नाते किसी से दबते नहीं। साहब तक उनसे दबते हैं। हैं भी राजपूत, राजघराने के। इस पुलिस

विभाग को सुधारने ही के खिए इसमें आए, नहीं तो वे बहुत बड़े कांग्रेसी थे।

मोरियो ने एक लम्बी साँस ले विस्मय से कहा—"ओह मुझे तो यह सब कुछ नहीं मालूम था। लेकिन मान लीजिए किसी केस का पता वे न लगा सके तो अपनी दक्षता एवं प्रतिष्ठा को स्थिर रखने के लिए किसी को झूठे भी फाँस सकते हैं।"

सिनहा ने कहा—"नहीं नहीं, ऐसा कभी नहीं हो सकता। उनका सर्वस्व चला जाय वे ऐसा नहीं कर सकते, ऐसा होना देख भी नहीं सकते।"

मो०—"ऐसा ही होना चाहिए। ऐसे कर्मचारी हों तो अन्याय अनर्थ हो ही क्यों? हाँ एक बात और सुनी है मैंने।"

सि०—"वह क्या?"

मो०—"सुना है कि आपसे विष देने की बात कहलायी जायगी मेरे विरुद्ध।"

सि०—"आप भी खूब कहती हैं। विष दवा के लिए दिया गया है, इससे न आपको ही इन्कार है, न मुझे ही। इसके अतिरिक्त मुझसे क्या कहलवाया जा सकता है भला? जिससे किसी को कोई हानि हो सकती है।"

उस बुद्धू के द्वारा लाल को इन सभी बातों की सूचना मिली जाती थी। अब लाल साहब को एक जाली दस्तावेज लिखने वाले की खोज लगानी थी। यदि वही जालिया मि० जान के दान-पत्र का लिखने वाला हो तो बहुत कुछ काम हो जाय।

उनके कुछ बुद्धू यह देखने के लिए छूटे थे कि मिस मोरियो डाक्टर सिनहा के अतिरिक्त और कहाँ जाया करती है।

शहर के भीतरी भाग में, कुंज गली में, जहाँ बहुत घूमघाम कर जाना पड़ता था, एक मकान था। लाल के आदमियों ने देखा कि मिस मोरियो वहाँ दो एक बार गई थी।

लाल ने एक बुद्धू को साथ लिया और कुंज गली को रवाना हो गए। लेकिन वह लाल नहीं थे, किसी लाली के वेश में थे। बुद्धू कोई कालेज का विद्यार्थी था। बुद्धू को हँसी आ जाती लाल को लाली के वेश में देख कर। एक सूनी गली में पहुँच कर लाल ने कहा—"देखो अगर इस तरह हँसोगे तो सब चौपट हो जायगा।"

बुद्धू ने कहा—"वहाँ थोड़े ही हँसूगा।"

कुंज गली में पहुँच उस मकान के पास जाकर रुक गए। उस मकान के दाहिनी ओर का मकान खण्डहर हो गया था और बाईं ओर दूध-मलाई की दूकान थी। बुद्धू ने दूकान के किसी नौकर से पूछा—"मृतुंजय लाल कहाँ हैं ?"

वह बोला—"कुछ काम है ?"

"हाँ, कुछ काम है भैया वे हैं कहाँ ?"

उसने दरवाजे से पुकारा—"अम्मा !"

"हाँ।"

"यहाँ आओ।"

एक बुढ़िया दरवाजे पर आई। पूछा—"क्या है ?"

नौकर ने कहा—"ये लोग भैया को पूछते हैं ?"

बुढ़िया ने कहा—"किसे पूछते हो ?"

बुद्धू—"मृतुंजय लाल को।"

बुढ़िया—"क्या करोगे ?"

बुद्धू—"कुछ जरूरी काम है।"

बुढ़िया—"कहाँ से आ रहे हो ?"

बुद्धू—"देहात से आ रहे हैं माता जी।"

बुढ़िया—"इस समय तो वे मिल नहीं सकते।"

बुद्धू—"बड़ा जरूरी काम है माता जी। कब मिलेंगे ?"

बुढ़िया—"अच्छा बैठो।"

बुद्धू—"यहीं बैठ जाऊँ अम्मा ?"

बुढ़िया—"नहीं, यहाँ भीतर चले आओ।"

"अच्छा माँ", कह बुद्धू बुढ़िया के पीछे चला और उसके पीछे लाली। बुढ़िया ने दाहिनी ओर का एक कमरा खोल दिया और कहा—"इसी में बैठो। वे थोड़ी देर में आ जायँगे।"

बुढ़िया भीतर चली गई। वे बैठ गए। कमरे में तख्त बिछा था, उस पर चटाई और उस पर एक फर्द पड़ा था।

लाली कभी-कभी थोड़ा घूंघट उठाकर धीरे से बुद्धू से बुदबुदा लेती। ३

मुस्कुराता, वह नयन तरेर देती।

थोड़ी ही देर में एक पतली कुछ धनुषाकार आकृति कुर्त्ता-धोती, चट्टी पहने द्वार के भीतर प्रविष्ट हुई। यही मृतुंजय लाल थे। आँखें कुछ छोटी लेकिन पैनी थीं। बाल आधे से अधिक सफेद हो गए थे। मुद्रा कौवे-सी थी।

बुद्धू देखते ही खड़ा हो गया। मृतुंजय लाल ने पूछा—"कहाँ से आ रहे हो तुम लोग?'

बुद्धू—"देहात से आरहे हैं बाबूजी।'

मृतुंजय—"किसे चाहते हो?"

बुद्धू—"हमतो सरकार, मृतुंजय लाल को चाहते हैं।"

मृ०—"क्या मतलब है?"

बु०—"सरकार बैठ जायँ, तो कहें।"

मृ०—"तुम्हें किसने बताया?"

बु०—"सरकार पूछते-पूछते पता लगा लिया।"

मृ०—"यह कौन है?"

बु०—"हमारी बहन है सरकार।"

"तो क्या काम है?" बैठते हुए मृतुंजय लाल ने पूछा। बुद्धू भी बैठ गया। बोला—"बाबूजी एक मुकदमें के कुछ पूछना है।"

मृ०—"क्या है?"

बु०—"हमारा मकान देहात में है। वहाँ हम अपने नाना के यहाँ रहते हैं। उनके हमी वारिस हैं। वे हमें कागज भी लिखने वाले थे। वे अक्समात् मर गये। पट्टीदार अब हमारे साथ जबरदस्ती करते हैं। हमारा हक हमें लेने नहीं देते।"

मृ०—"तो नालिश करो।"

बु०—"नहीं बाबूजी, नालिश करने को न कहें, एक कागज लिख दीजिए। नाती तो हम है ही, और पक्का सबूत हो जाए।"

मृ०—"तुम्हारे नाना मर गए तो कागज कौन लिखेगा। जाल बनाना चाहते हो।"

बुद्धू ने हाथ जोड़ कर कहा—"नहीं सरकार! हम तो उनके नाती है ही और हमारा हक भी है ही। आप हमारा उपकार कर देंगे, तो भगवान की

कृपा से आपके बाल-बच्चे सुखी रहेंगे।"

मृ०—"मैं झूठा कैसे लिखूँ।"

बु०—"झूठा कहने ही को है। हम हाथ जोड़ते हैं। पूरी फीस देंगे सरकार।"

मृ०—"हम यह सब नहीं करते।"

बु०—"बहुत गरीब हैं। आप हमारी सहायता न करेंगे, तो हम कहीं के न रहेंगे। अभी मेरी बहन का विवाह भी नही हुआ है।

मृ०—"भई, तो मैं क्या करूँ ?"

बु०—"सरकार जो कुछ करेंगे आप ही करेंगे। मेरी और मेरी बहन की ओर देखिए।"

मृतुंजयलाल ने लाली को देखा तो सही, लेकिन क्या देखा ? वह तो घूँघट काढ़े बैठी थी। मुख तो पर्दे के भीतर था। हाँ, गोरी-गोरी कलाइयाँ अवश्य उसे अपनी ओर खींच रही थीं।

वे बोले स्वीकृति भरी तनिक झल्लाहट से—"तुम तो मुझे परेशान कर रहे हो।" बुद्धू ने गिड़गिड़ा कर कहा—"नहीं सरकार, बड़ा उपकार होगा।"

मृ०—"तो क्या फीस दे सकते हो ?"

बु०—"दो सौ दे सकेंगे सरकार।"

मृ०—"इतना बड़ा काम और दो सौ फीस ! मैं तो यह सब करता नहीं, तुम्हारे गिड़गिड़ाने पर दया आ गई। पाँच सौ से कम में नहीं हो सकता।"

बु०—"नहीं सरकार।"

मृ०—"नहीं सरकार तो नहीं सही।"

बु०—"मान जाओ सरकार, बहुत गरीब हूँ।"

मृ०—"दूसरे की जायदाद लेने जा रहे हो गरीब क्यों हो ? मंजूर हो तो रुको, नहीं जाओ। मुझे देर हो रही है।"

इतना कह वे उठने लगे। बुद्धू ने फिर गिड़गिड़ा कर विनती की—"अच्छा सरकार देंगे।" फिर वे बैठ गए। पूछा—"तैयार होकर आए हो।"

बुद्धू ने पूछा—"रुपये के अलावा और कौनसी तैयारी चाहिए सरकार ?"

मृ०—"उनके अक्षर, कागज, गवाह—यही सब।"

बु०—"अक्षर तो हैं, और नहीं।"

मृ०—"उन्हें रखते जाओ। गांव-गांव सब बताते जाओ। परसों रुपए ले आना। किसी से चर्चा करोगे तो जेल जाना होगा, समझा।"

बु०—"समझा सरकार।"

वे चले आए। रात को जब लाल पीली कोठी गए, तो हेम से कहा—"एक तमाशा देखोगी श्रीमती जी।"

हेम ने पूछा—"क्या ?"

लाल—"हमारे साथ जासूसी का काम करोगी ?"

हेम—"करूँगी तो, लेकिन हमें क्या मिलेगा ?"

लाल—"तब तुम क्या कर सकोगी ?"

हेम—"अच्छी बात है। कुछ न सही। करना क्या होगा ?"

लाल—मुझे हेम बनना होगा, तुम्हें लाल।

हेम हँस पड़ी। पूछा—"सचमुच ?"

लाल—"हाँ सच ! और अभी कुछ न पूछना होगा।

हेम—"अच्छी बात है ! मैं भी एक बात बताऊं।"

लाल—"हाँ, हाँ।"

हेम ने उस दिन की गुप्ता की सारी कहानी कह सुनाई।

लाल ने विस्मय और तमतमाहट से कहा—"हूँ !"

हेम बोली—"तुम्हें तमतमाने का क्या अधिकार है लाल साहब ?"

"तुम्हें मुझसे कहने का क्या अधिकार था श्रीमती जी ?" लाल ने कहा।

हेम बोली—"आप अपने को बहुत बड़ा शिष्ट समझते हैं। बहन के सामने हमारा-आपका फैसला होगा। आप भी गुप्ता से पीछे कहाँ है ?"

"मुझे डर नहीं। जब चाहें तब।" लाल ने कहा। कुछ देर रुक हेम की ठोड़ी पकड़ पूछा—"सच कह रही थीं।"

हेम—"हाँ, सच कहा है।"

हेम की मुद्रा गंभीर हो गई। लाल बोले—"गुप्ता बहुत नीचे गिरा जा रहा है। लेकिन तुमने तो वीरगांनाओं की वीरता दिखलाई। लेकिन हेम, किसी को दोष ही क्या ? दोष तो रम्भा, उर्वशी, रती को लजाने वाली हेम की इन

आंखों का है, इन किसलय-कोमल पतले-पतले तरुण अरुण-अधरों का है, नवनीत से, स्फटिक मणि से, सोने से चिकने-चमकते इस गले और उरोजों का है।"

लचीली छबीली······। हेम ने लाल के मुँह पर अपना हाथ रखते हुए कहा—"लाल तुम बड़े·········।"

बुद्धू तैयार हो गया। लाल ने हेम को धोती एक मैला कोट, टोपी और जूते पहनाए। वह ऐसी लगने लगी मानो रामलीला तथा थियेटर का कोई अभिनेता हो। ये लोग भी प्रायः बड़े-बड़े बाल रखते हैं। नेपथ्य गृह से निकल निर्दिष्ट स्थान को रवाना हो गए।

सूनी गली में लाल ने कहा—"देखो हेमचन्द, इस तरह मुस्कुराओगे, हँसोगे, तो ठीक न होगा। तुम हेम नहीं, हेमचन्द हो। समझे ?"

हेम ने मुस्कुरा कर कहा—"समझा सरकार ?"

"गजब न करो, गजब न करो। फिर वही मुस्कुराहट !" लाल ने कहा।

हेम ने कहा—"अब न हँसूगा सरकार।"

थोड़ी देर में वे अभिनेता मृतुंजय लाल के मकान पर पहुँच गए। पहले वही बुढ़िया मिली। उन्हें उसी कमरे में बिठाया। कभी बुदबुदाहट होती, कभी मौन रहता।

आध घण्टे बाद मृतुंजय लाल आए। लेकिन आज दूसरी ही ओर से आए। जिस कमरे में वे बैठे थे, उसके पीछे की दीवार का एक दरवाजा खुला। मृतुंजय लाल ने उन्हें उसी कमरे में बुलाया।

वे मसनंद के सहारे बैठ गए। बगल में एक सन्दूकची, कलम, दवात रक्खे थे। वे लोग भी कुछ दूर पर सामने ही बैठ गए।

मृतुंजय लाल ने हेमचन्द की ओर संकेत कर पूछा—"यह कौन है ?"

बुद्धू—"ये अपने ही गांव के हैं।"

मृतुंजय—"क्या करता है ?"

बु०—"घर खेता बारी है। ये नाटक, रामलीला मे काम करते हैं।"

मृ०—"लाये हो रुपये।"

बु०—"हाँ सरकार।"

मृ०—"निकालो ! कागज तैयार है।"

बु०—"सरकार आपही का भरोसा है।"

मृ०—"क्यों घबराते हो ! तुम्हें जो कुछ दे देता हूँ, वह हाईकोर्ट तक टूट नहीं सकता।"

हाथ जोड़ उपकृत स्वर में बुद्धू ने कहा—"सरकार धन्य हैं भगवान आपके बाल बच्चे सुखी रक्खे।"

बुद्धू ने नोट के पुलिन्दे निकाल सामने रख दिए। मृतुंजय लाल ने गिने।

सौ के फुटकल और चार नोट सौ-सौ के थे। उन्हें सन्दूकची के हवाले कर लिखित पत्र उनके सामने रख दिया। ये लोग अक्षर का सादृश्य देख विस्मित हो गए। हेमचन्द और लाली के हस्ताक्षर ले लिये। एक गवाह के लिए और कहा चाहे यहीं लाना, चाहे इसी जगह हस्ताक्षर या अँगूठे का निशान ले लेना। यह स्याही लेते जाओ।"

हेमचन्द की ओर संकेत कर कहा—"यह पढ़ा लिखा होशियार है, ठीक कर लेगा। क्या नाम है लड़के का ?"

बुद्धू ने कहा—"हेमचन्द।"

वे हेमचन्द की ओर देख फिर बोले—"देखो हेमचन्द, यहीं हस्ताक्षर या निशान बनवा लेना, समझे ?"

"जी हाँ, समझ गया।" हेम ने कहा।

मृतुंजय लाल रुपए ले भीतर गए और वे दस्तावेज ले बाहर निकले। उसी सूनी गली में आ हेम जोर से हँस पड़ी और बोली—"मुझे तो ऐसी हँसी आती थी कि रोके न रुकती थी।"

लाल-लाली ने कहा—"हम तो डर रहे थे, कहीं तुम हँस न पड़ो।"

रहा।
को द.

तुरीयानन्द

गुप्ता घाट के ऊपर स्वामी तुरीयानन्द का आश्रम था, आश्रम क्या बँगला था। कहा जाता है कि वे हाईकोर्ट के जज थे। अपने उच्च पद को त्याग उन्होंने संन्यास ले लिया था। बड़े विद्वान, वैज्ञानिक, राजनीतिज्ञ एवं जासूसी के काम में बड़े दक्ष थे। प्राय: लोग इन विषयों में उनसे परामर्श लेने जाया करते थे।

उनके अपना पद त्याग देने के विषय में लोग तरह-तरह की बातें कहा करते थे। उनमें कौन-सी बात सची थी, कहा नहीं जा सकता।

गुप्ता आठ बजे रात को उठे और मोरियो के यहाँ गए। चाय पीकर बातें होने लगीं। गुप्ता ने पूछा—"क्या उदास हो इतनी, दो चार दिनों से।"

मोरियो ने कहा—"उदास ही होने की तो सभी बातें हैं, खुश होने की क्या बात है ?"

गुप्ता—"कोई नई बात तो नहीं है ?"

मोरियो—"पुरानी ही बातें क्या कम हैं। और नई बात होने में क्या देर लगती है ? पुलिस का फन्दा सिर पर है। सब कुछ तो चला ही गया, अब जान भी नहीं बचने पाती। इसकी भी मुहब्बत नहीं। लेकिन मुँह में कालिख लगाकर मरना होगा।"

गु०—"यह सब क्या कह रही हो ? तुम्हारी जान क्यों जायगी, कुछ पता नहीं चलता। क्यों इतनी घबरा गई हो। कोई बात हो तो साफ बताओ।"

मो०—"कोई बात न होती, मुझ पर सन्देह न होता, तो मेरी सम्पत्ति क्यों न मुझे दी जाती। लाल साहब ने न जाने क्या सोच रक्खा है ?"

गु०—जब तक पुलिस किसी नतीजे पर नहीं पहुँच जाती, तब तक वह सब पर सन्देह करती है। क्या तुम जानती हो कि प्रेमलता, हेमलता, श्रीमती बोस, नौकर-चाकर इन लोगों पर संदेह नहीं है ? सब पर है, और किसी पर

नहीं। तुम लाल साहब को नहीं जानतीं। झूठे ही वे किसी को नहीं फाँस सकते। क्या मैं तुमसे पूछ सकता हूँ कि मि० जान की मृत्यु में कोई विशेष रहस्य है ? मुझे आशा ही नहीं, विश्वास भी है कि तुम मुझसे कुछ छिपाओगी नहीं।"

मोरियो ने छलछलाई हुई आँखों और भर्राये हुए स्वर में कहा—"क्या आप भी मुझे हत्यारिनी समझते हैं ? बुरे दिन आते हैं तो ऐसा होता ही है।"

इतना कहते-कहते उसका कण्ठ निरुद्ध हो गया।

गुप्ता ने कहा—"मेरी बातों से आपको कष्ट हुआ, बहुत कष्ट हुआ। लेकिन आप मुझे मेरी दृष्टि से देखेंगी तो ऐसा न होगा। मुझे सदैव अपने निकट, अपने साथ, अपने में पाएँगी। गुप्ता के रहते कोई चिन्ता नहीं।"

स्पेशल नाइट ड्रेस में सजी हुई मोरियो ने अपनी अर्द्धकातर दृष्टि गुप्ता पर डाली। मोरियो विचित्र सुन्दर लग रही थी। गुप्ता तनिक मुस्कुराकर बोले—देखो मेरी प्यारी मोरियो, जब गुप्ता और मोरियो निकट हों, तो चिन्ता कैसी, आपदा कैसी। आँखों में वही मुस्कुराहट आ जाने दो जिसमें गुप्ता डुबकियाँ लगाकर जीवन का संताप मिटा देता है। आने दो मेरी मिस, वह मुस्कुराहट।"

मोरियो पर वही मुस्कुराहट खिल पड़ी। गुप्ता ने अपना हाथ मोरियो के कंधे पर रख दिया। उन्होंने कहा–"चलो पार्क में।"

गुप्ता बोले–"जहाँ भोली-भाली कलियाँ मुस्कुराया करती हैं; जहाँ प्रेम-मुग्ध रश्मियाँ उनके गले से लिपट, उनके वक्ष का आलिंगन कर अपने को भूल जाया करती हैं। वहीं हम लोग भी···?"

दोनों पार्क में जा जी भर खेलते रहे, मनमानी खेलते रहे, मदन-विलास करते रहे, मग्न विलास करते रहे, नग्न विलास करते रहे। बहुत देर बाद उन्हें क्लब पहुँचा, गुप्ता गुप्ता घाट की ओर रवाना हो गए।

गुप्ता जब तुरीयानन्द के बँगले पर पहुँचे, तो वे अकेले बैठे कोई पुस्तक देख रहे थे। उन्होंने अभिवादन किया। स्वामीजी ने आशीर्वाद दे पूछा–"क्या समाचार है ?"

गुप्ता ने कहा—"सब अच्छा ही है।"

स्वामी जी—"सुराग का काम कैसा हो रहा है ?"

गुप्ता—"सब आप से बता चुके हैं। लाल साहब बहुत जोरों से लिपटे हैं।"

स्वामीजी—"आगे क्या होना चाहिए ?"

गुप्ता—"जैसा आप उचित समझें।"

स्वामीजी ने फर्श पर पैर रख कुछ जोर से दबाया, वह एक जोड़ पर फट गया। नीचे एक सीढ़ी थी। वे लोग उसी से भीतर गए। एक कमरे में रंग-बिरंगे तरह-तरह के कोट, जाँघिए, पायजामे, पायताने, दस्ताने, नकाब आदि भरे पड़े थे।

स्वामी जी ने कहा—"इनमें से अपने मन का चुन लेना।" वे बोले—"आप जो कहिए।" उन्होंने कहा—तो यही काला लो, भूतों का रूप इसमें अच्छा आएगा।"

फिर स्वामी जी ने एक कील दबाई। वे दूसरे कमरे में पहुँचे। उसमें तरह तरह के हथियार पिस्तौल, राइफल आदि भरे थे। उन्हों ने पूछा—"इसमें से कुछ ले जाना चाहते हो ?" वे बोले—"पिस्तौल और छुरा।"

स्वामी जी ने फिर एक कड़ी खींची। दोनों दूसरी कोठरी में पहुँचे। उसमें तरह-तरह की शीशियाँ और डिब्बे और टार्च की सी चीजें थीं। उन्होंने पूछा, "यहाँ से भी जो लेना हो ले लेना।" वे बोले—"बेहोशियाँ; लखलखे ले लेंगे टार्च तो है।"

उन्होंने एक लाइट फेंकी। वह दीवार के शीशे पर लगी। दीवार में एक दरार खुला। दूसरे कमरे में पहुँचे, उसमें तरह-तरह की कुर्सियाँ स्टूल और तिपाइयाँ थीं।"

दोनों दो कुर्सियों पर बैठ गए। नीचे का बटन दबाया। दूसरे कमरे में पहुँच गए। उसमें बहुत से बटन लगे थे, और कुछ पत्थर तथा लोहे के पतले-पतले खम्भे गड़े थे। वहाँ से बटन दबा घाट वाले कमरे में गए, जहाँ से कोई भी नदी में गुप्त हो बाहर जा सकता था।

इसी तरह के और भी बहुत से कमरे पाकालय, स्नानागार, भण्डार, कोष-गृह आदि थे।

यहाँ से वे लोग वैसे ही फिर उस कमरे में गए जहाँ बहुत-सी सुंदरियाँ थीं, एक साथ और अलग-अलग, कोई शृंगार करती, कोई धीरे-धीरे गाती…। ऐसे ही कुछ पुरुष भी थे।

डाका

० ० ० ०

बारह बजे रात को काली पोशाक में दस नकाबपोश तुरीयानंद के बँगले के सामने से कार में रवाना हुए। पीली कोठी के कुछ इधर ही एक पार्क के समीप कार खड़ी हो गई। वे नकाबपोश कार से उतर पीली कोठी की ओर चले। निकट आ तीन लाल कोठी में और सात पीली कोठी में चले। अभी उनमें लोग जाग रहे थे, यह बात शायद उन नकाबपोशों को मालूम थी। उनका कोई आदमी वहाँ पहले से नियुक्त था।

वे धड़धड़ा कर ऊपर चले गए। लाल साहब अभी-अभी न जाने कहाँ से और किस वेश में आ चाय पी लेट गए थे। हेमलता दूसरे कमरे में अपनी बहन से कुछ बातें कर रही थी।

नकाबपोशों ने हेमलता के पास जा उसे पकड़ना चाहा। वे दोनों अचंभित हो गईं। सामने उनके पिस्तौलों की नालियाँ सीधी तनी थीं।

हेम बहुत निर्भीक थी। उसने पूछा—"आप लोग कौन हैं? वे कुछ न बोले। प्रेमलता ने लाल साहब को पुकारना चाहा। हेम ने कहा—"वे कहाँ आए हैं? तुम डरो मत बहन।"

लाल साहब अपने कमरे की खिड़की से सब कुछ देख रहे थे। उन्होंने सोचा ये डाकू सब तरह से लैस होंगे। शोरगुल करने से खतरा बढ़ जायगा।

जब हेम ने कहा—"लाल साहब कहाँ हैं?" उसी समय नकाबपोशों ने अपने चतुर्दिक ऐसा प्रकाश कर दिया कि कोई उन्हें देख नहीं सकता था। लाल अब निशाना लगाते तो किस पर? वे कुछ न बोले।

नकाबपोश हेम को बाँध ले चले। प्रेमलता बेहोश पड़ी थी। उसी समय लाल कोठी में कुछ ऐसी ही घटना हुई—नकाबपोशों ने वहाँ से कोई स्त्री नहीं, रुपए चुराए। श्रीमती बोस को आलमारी की ताली दे देनी पड़ी। उसमें जो

कुछ था निकाल लिया। अधिक पूंजी नहीं थी।

जब पीली कोठी से वे नकाबपोश निकले उसके कुछ ही पहले लाल कोठी के नकाबपोश निकले थे। सब लोग कार पर जा बैठे और कार वेग से चल पड़ी।

लाल साहब बाहर आकर देख रहे थे। उनके रवाना होने के थोड़ी ही देर बाद वे भी कार पर बैठ दूसरी सड़क से चले। इसके पूर्व उन्होंने प्रेमलता को होश में ला दिया था। यह सड़क कुछ घूम फिर कर उस सड़क से जिस पर से वे नकाबपोश गए थे, एक चौमुहानी पर मिल जाती थी।

जब लाल साहब चौमुहानी पर पहुँचे, तो वह कार कुछ दूर पर जा रही थी। वे वहाँ से उस सड़क पर चले जो उस सड़क से जिस पर से नकाबपोश गए, एक तिमुहानी पर मिलती थी।

जब वे तिमुहानी पर पहुँचे तो नकाबपोश फिर कुछ आगे बढ़ चुके थे। वहाँ से भी वे पहले की तरह आगे बढ़े।

लाल साहब जा तो रहे थे बड़ी होशियारी से, परन्तु निरापद न थे। मुठ-भेड़ हो जाने पर भारी संकट का सामना करना पड़ता। ये थे एक और वे थे दस। इनके पास दो पिस्तौल बीस-बीस फायर के थे, पर वे भी तो पूरे लैस थे। कुछ भी हो, लाल साहब राजपूत थे, उन्हें भय तो लगता न था।

गुप्ता घाट पर जा कार रुक गई। इन्होंने भी अपनी कार एक झुरमुट में रोक दी। पैदल आगे बढ़े। कुछ दूर जा एक अंधेरे स्थान में रुक गए।

नकाबपोश कार से उतर कर चलने लगे। लाल साहब ने निशाना लिया। तीन के पैर में मारा। वे गिर पड़े। ये वे ही थे जो कोई गठरी या कुछ सामान हाथ में लिए हुए थे। तुरन्त ही मोटर के पहिए में भी निशाना मारा। तुरन्त ही एक-दो-तीन-चार बार तरह-तरह की सीटियाँ बजाईं। फिर फायर किए। जो बचे थे भाग गए। उन्हें जान पड़ा पुलिस का घेरा पड़ गया है।

वे तुरन्त वहाँ पहुँचे और हेम की गठरी और एक छोटी-सी सन्दूकची लेकर भाग आए। कार के पास आ उन्होंने किसी शीशी का मुंह खोल हेम की नाक के लगाई। वह तुरन्त ही होश में आने लगी। कुछ देर में वह होश में आ गई। हेम ने आँखें मींच कर कहा—"लाल! क्या-क्या हो गया? हम

लोग कहाँ हैं ? तुम कैसे हो ?"

लाल ने कहा—"हम लोग गुप्ता घाट में हैं। खतरा पार कर गए हैं, लेकिन पूरी तरह नहीं। तुम जल्द इस कार में बैठ कोठी चली जाओ। यह शीशी लेते जाओ, शायद श्रीमतीजी (प्रेमलता) बेहोश हो गई हो और कोई खतरा नहीं है। तुम जाओ, जल्दी जाओ।"

हेम ने कहा—"नहीं, मैं तुम्हें अकेले छोड़ कर नहीं जा सकती।"

लाल—"अभी यहाँ रहकर मैं कुछ काम करूँगा।"

हेम—"तो मैं भी साथ ही रहूँगी। तुम पर कोई संकट आ जाय तो।"

लाल—"हम दोनों के चलने से काम बिगड़ जायगा।"

हेम—"तो हम दोनों यहीं रहें।"

लाल—"वहाँ भी तो देखना चाहिए।"

हेम—"तो हम यहाँ रह जाएँ, तुम्हीं चले जाओ।"

लाल—"तुम समझ नहीं रही हो। जाओ, जल्द जाओ। मेरे किसी बुद्धू को भेज दो। लाल कोठी में भी जाना।"

हेम—"पुलिस को खबर दे दूँ तो क्या हर्ज है!"

लाल—"नहीं बुद्धू को भेजो।"

हेम कार पर बैठ कोठी रवाना हो गई। तुरन्त बुद्धू को भेज कर प्रेमलता के पास गई। वे होश में आ गई थीं, फिर भी पूरे होश में न थीं। सब कुछ पूछा। हेम जो कुछ जानती थी बतलाया। फिर वे लाल कोठी में गई। श्रीमती बोस और उनकी लड़की बेहोश थीं। उन्हें होश में लाकर पूछा—"यहाँ का क्या हाल है?"

उन्होंने बतलाया—"जो कुछ यहाँ आलमारी में था सब ले लिया। अब बेटी का ब्याह होना भी कठिन है।"

हेम ने कहा—"इसकी चिन्ता न करो बहन। क्या बेटी ब्याहे बिना रह सकती है?"

वहाँ लाल ने सोचा कि जाकर उन आहतों को पकड़ लें। परन्तु सोचा वहाँ अकेले जाना अच्छा न होगा। वे एक पेड़ पर चढ़ गए। थोड़ी देर में बुद्धू आ उन्हें ढूँढ़ने लगा। उससे सारा वृत्तान्त कह कर कहा—"तुम यहीं आसपास

रहकर देखना कि उस मकान से कब कौन बाहर निकलता है। जब तक मैं दूसरा बुद्धू न भेजूं, तुम यहीं कहीं रहना।"

हेम की चोरी से जो अनुमान लाल ने लगाया, वह सही निकला। अनुमान तो उनका शायद कोई भी नहीं गलत होता था। अनुमान किया था, वे आहत शायद अब न हों। बुद्धू भिक्षुक के वेश में वहाँ गया तो देखा बात सही थी। कार अभी वहीं थी। लाल का दूसरा अनुमान था कि कार में कोई नम्बर या कोई ऐसा चिन्ह न होगा, जिससे कुछ पता चले। यह भी सही निकला।

दूसरी रात दूसरे बुद्धू ने उन्हें बता दिया कि उस मकान के सामने से नहीं, पीछे की ओर से उसने गुप्ता को जाते देखा। यह भी सही निकला। यह मकान वही स्वामी तुरीयानन्द का बँगला था।

दूसरे दिन आठ बजे रात को चेहरे और बालों पर गर्द लपेटे लाल गुप्ता के बँगले पर पहुँचे। गुप्ता भीतर थे। बैठक में आए। लाल ने कहा—"सो रहे हो क्या ?"

गुप्ता ने कहा—"बैठो, कहाँ से आ रहे हो।" दोनों बैठ गए। लाल ने कहा—'बाहर से आ रहा हूँ, गाजीपुर बलिया होते हुए सीधे यहीं चला आया ? सब कुशल तो है न ?"

गुप्ता ने एक लम्बी साँस लेकर कहा—"कुशल तो नहीं है, मैं भी तो बाहर ही गया था। आज दोपहर को आया हूँ। लाल कोठी और पीली कोठी में डाका पड़ गया था।"

लाल ने विस्मय से कहा—"डाका।" गुप्ता ने कहा—"सुनता हूँ लाल कोठी से माल गया और पीली कोठी से देवी हेमलता को ही बाँध कर उठा ले गए थे सब।"

लाल ने व्यग्र हो पूछा—"फिर क्या हुआ।"

वे बोले—"देवी जी न जानें कैसे छूटीं, बेहोश थीं। कुछ माल भी मिला। शायद मुझे तो साहब से ही मालूम हुआ। अभी वहाँ गया नहीं। ऐसी-ऐसी घटनाएँ हो रही हैं कि मुझे तो काठ मार जाता है। बात क्या है लाल।"

लाल ने आतुरता के साथ कहा—"अच्छा अब मैं चलूँगा।"

गुप्ता—"चाय पी लो।"

लाल—"देर होगी।"

गुप्ता—"देर नहीं है, तैयार है।"

ट्रे आ गयी। वे चाय पाने लगे। इतने में हेमलता भी पहुँच गई। पहले गुप्ता की दृष्टि उन पर पड़ी। वे साश्चर्य, साह्लाद बोल उठे—"लीजिए देवी जी स्वयं आ गईं।"

गुप्ता ने उठकर उनका स्वागत किया। लाल भी उठ गए। वह एक कुर्सी पर बैठ गई, तो वे भी बैठ गए।

हेम ने गुप्ता के दिए हुए प्याले से एक घूंट पीकर कहा—"आप लोग कब आए। मैं लाल साहब के बंगले से होकर आ रही हूँ। पता चला कि ये नहीं हैं। फिर यह ज्ञात हुआ कि गुप्ता जी आज आए हैं। भला यह तो बताइए कि आप लोग क्या कर रहे हैं। जब किसी बात का पता ही नहीं लग पाता, तो क्या जाँच-पड़ताल करते हैं? ऐसा डाका देखा नहीं।"

गुप्ता ने लज्जा, जिज्ञासा तथा चिन्ता के भाव से कहा—"क्या बताऊँ देवी जी कुछ समझ में नहीं आ रहा है? ऐसे मामले कभी सामने न आए थे। कुछ बताइए तो।"

हेम ने कहा—"क्या बताऊँ। सिरसे पैर तक काले लिबास में ढके नकाब-पोश सशस्त्र आ धमके। मेरा हाथ पकड़ लिया बहन तो घबरा गईं, अपने लिए नहीं, मेरे लिए। लाल साहब-लाल साहब पुकारने लगीं। मैंने कहा—वे कहाँ हैं? बहन! घबड़ाओ नहीं।" फिर मैं बेहोश हो गई। न जाने कहाँ गई, न जाने कैसे अपने को वृक्ष के नीचे होश में पाया। कुछ ही दूर पर देखा दो व्यक्ति भागे जा रहे थे इतनी ही तो बात है।"

लाल ने दीर्घ निःश्वास छोड़ते हुए कहा—"इतनी ही बात।"

हेम—"जी हाँ! ऐसे ही डाकू लाल कोठी में भी थे। वहाँ से तो बस रुपये गए। वहाँ भी बेहोश थे।"

लाल—"अधिक आश्चर्य आपके फँसने में नहीं, छूटने में है। यह तो समझ ही में नहीं आता।"

गुप्ता—"सही कहा मि० लाल, आश्चर्य इनके छूटने में है।"

लाल की चाल

०००००००००००

पार्क में टहलते हुए लाल ने गुप्ता से कहा—"इन मामलों में किसी से राय ली जाती। मेरी तो बुद्धि ही जड़ हो गई है।"

गुप्ता—"क्या आखीर यही कहना होगा कि कुछ पता नहीं चलता। लेकिन यह तो बड़ी शर्म की बात होगी।"

लाल—"तो क्या इसी के पीछे मर जायँगे। सुराग न लग सका, तो यह कहना ही होगा। झूठे ही किसी का गला तो फाँसना अच्छा न होगा।"

गुप्ता—"तो हार मान जाएँगे ?"

लाल—"नहीं तो क्या करेंगे ? अभी तो हार मानते नहीं। पर अन्त में माननी ही होगी।"

गुप्ता—"हाँ, तो राय किससे ली जाय, अपने विभाग के ही विशेषज्ञों से ?" लेकिन लाल, मुझे विश्वास है कि तुमसे दक्ष इस विषय में कोई नहीं।"

लाल—"गुप्ता, यह क्या कहते हो ?"

गुप्ता—"अच्छा एक बात बताऊँ ?"

लाल—"कहो।"

गुप्ता—"स्वामी तुरीयानन्द का नाम सुना है ?"

लाल—"हाँ सुना तो है, लेकिन उनके विषय में विशेष कुछ नहीं जानता, और न मुझे कोई उत्सुकता ही हुई।"

गुप्ता—"सुनता हूँ वे कई विषयों के विशेषज्ञ हैं। नौरीकी छोड़कर संन्यास लिया है। एकाध बार वहाँ गया तो हूँ, लेकिन किसी वैसे काम से नहीं। माँ की तबियत खराब थी। उन्हीं के लिए राख-भभूत लेने गया था। तुम तो जानते हो मुझे झाड़-फूंक, तंत्र-मंत्र, भूत-प्रेत इन सब पर कुछ विश्वास रहता है, चाहे भय से हो चाहे अज्ञान से।"

लाल—"उनके यहाँ चलने में तो कोई हर्ज है नहीं। अनुभवी हैं। सम्भवतः कुछ बताएँ।"

दोनों तुरन्त रवाना हो गये। वहाँ पहुँच स्वामी जी को नमस्कार कर बैठ गए। गुप्ता ने कहा—"ये हमारे मित्र लाल साहब हैं। इनसे बढ़कर जासूस इस समय हमारे विभाग में कोई नहीं है।"

स्वामीजी—"बड़ा अच्छा किया इन्हें लेते आये। आज कल क्या हो रहा है ?'

गुप्ता—"क्या बताऊँ स्वामी, ऐसे मामले आ गए हैं कि कुछ कहते नहीं बनता।"

गुप्ता ने सब हत्याओं और डाके का संक्षिप्त वर्णन उनसे कह डाला। स्वामी जी देर तक मौन रहे। गुप्ता और लाल उनका मुख देखते रहे। कुछ देर बाद स्वामीजी बोले—"सब घटनाएँ रहस्य से भरी हैं।"

लाल—"हाँ स्वामी जी, हम लोगों की तो बुद्धि ही कुण्ठित हो गई है। कोई मा.' ही नहीं मिलता।"

गु:ता—"पता न चला तो अच्छा नहीं। फिर तो शांति रह ही नहीं सकती। आतताायी बढ़ते ही जायँगे।"

स्वामीजी—"मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि इस विभाग में तुम लोगों जैसे भी कर्मचारी हैं। यों तो राष्ट्र के सभी विभागों में अन्धा-धुन्धी, धाँधली चल रही है, लेकिन पुलिस विभाग उन सबों में भी गया बीता है। राज्य-संचालन में बहुत बड़ा दायित्व इस विभाग का है। लेकिन उसका इतना बड़ा दुरुपयोग किया जाता है कि कुछ ठिकाना नहीं। अत्याचार बहुत बढ़ गया है। इस राज्य में न्याय और सत्यता से ही कानूत की रक्षा की जाती है, नाम मात्र को कानून बर्ताव किया जाता है। इसी से इतने सबल साम्राज्य की नींव हिल गई। अब इसका अन्त हो कांग्रेस का राज्य हो रहा है।"

गुप्ता ने कहा—"जिसे भगवान की ही चिन्तना अभीष्ट है, जो संसार के द्वन्द्वों से ऊपर उठ चुका है, उनके सामने ये सब पचड़े गाना उचित नहीं। परन्तु महात्मा परमात्मा की इस सृष्टि में भी जीवों को सुखी और निःक्लेश देखना चाहते हैं। इसीसे आपको कष्ट दिया। हमें कोई रास्ता बताइए।"

स्वामीजी ने कहा—"अच्छा, फिर कभी आना विचार किया जायगा

इतने दिन हुए, चर्चा भी न की।"

स्वामीजी को अभिनन्दन कर वे चल दिए। स्वामीजी बोले—"हाँ, उन से सतर्क रहना। संभव है, अवसर पा फिर आक्रमण करें। वे धन की अपेक्षा स्त्रियों की ही चोरी अधिक करते प्रतीत होते हैं।"

वे बहुत अच्छा कहकर चल पड़े। वहाँ से गुप्ता अपने बँगले को चले गए और लाल पीली कोठी को। वहाँ पहुँच देर तक वे प्रेम और हेम से बातें करते रहे। आने को हुए तो प्रेमलता ने उन्हें रोक लिया और कहा—"भोजन करके जहाँ जाना हो जाइए।"

लाल ने कहा—"अब मैं कई दिनों के लिए बाहर जाना चाहता हूँ। यहाँ पूरा प्रबन्ध कर दिया है।"

प्रेमलता बोली—"आपके जाने से फिर कोई नई आफत न आ पड़े।"

लाल—"आएगी भी तो कोई क्षति नहीं पहुँच सकती। मिलिटरी पुलिस का पहरा रहेगा।"

प्रेम०—"अच्छी बात है। हाँ, उस दिन हेम ने मुझे आपका नाम पुकारते हुए रोक दिया था। आपका रहना क्यों छिपाया?"

लाल—"बड़ा अच्छा किया देवी जी, नहीं तो सब कुछ चौपट हो जाता। मुझे छिपा लेने ही से सब कुछ हुआ। बड़ी होशियारी की इन्होंने।"

प्रेम ने तनिक मुस्कुरा कर कहा—"हेम भी जासूस हो गई आपके साथ।"

हेम और लाल पर हल्की लज्जा की मुस्कुराहट मुकुलित हो गई। प्रेम ने कहा—"हेम, तू यहाँ रहना, मैं आती हूँ।"

अब हेम और लाल की बातें होने लगीं। लाल—"देखो हेम, तुम्हारे ही रहने से डाका पड़ रहा है। रूप और यौवन भी बुरी बला है। मेरी इच्छा है तुम्हें अपने साथ बाहर लेता चलूँ। लेकिन देवी जी को कष्ट न हो तो।"

हेम ने मुस्कुरा कर कहा—"तो तुम किसी किस डाकू से कम हो? मैं तुम्हारे साथ न जाऊँगी।"

लाल—"तुम लोगों की नहीं में हाँ से ज्यादा मजा रहता है।"

इसका उत्तर लाल को हेम की एक लजीली, लचीली, मुस्कान में मिला। फिर वह बोली—"सच कहते हो, ले चलोगे? बहन से पूछ लो, अभी"

आएँ तो।"

लाल—"तुम पूछ लो।"

हेम—"मैं कैसे पूछूंगी भला ? तुम बड़े···।"

लाल—"जी तो तुम्हारा मचल रहा है, मैं क्यों पूछूं ?"

हेम—"बड़े जी मचलाने वाले बने हो। जाओ मैं नहीं जाता।"

लाल—"जाओ, बखेड़ा दूर हुआ।"

थोड़ी ही देर में हेम की आँखें छलछला गईं। लाल ने करुण स्वर में पूछा—"हेम, क्या हो गया ? क्या···?"

हेम के आँसू नीचे गिरने लगे। वह गीले स्वर में बोली—"कुछ नहीं।"

"कुछ नहीं ! बताओ हेम क्या मेरी···" लाल ने कहा।

हेम बोल उठी—"जीजा जी की याद आ गई। यह जीवन सुखी नहीं हो सकेगा लाल। बहन का हृदय रात-दिन रोया करता है। मेरे लिए वे अपने आँसू पी जाया करती हैं। मेरे लिए वे कहीं बाहर से मुस्कुराहट बुला लिया करती हैं।

लाल ने सजल नेत्रों से कहा—"हेम, हृदय में साहस रक्खो। अभी वे आकर तुम्हें रोते देखेंगी, तो भला क्या होगा ?"

यों कह लाल ने अपने रूमाल से हेम के आँसू पोंछ दिए। तब तक प्रेमलता आ गईं। बोलीं—"तुम लोग ऐसे उदास क्यों हो ?"

लाल ने कहा—"कुछ भी तो नहीं देवी जी। हाँ एक बात है। आपको यहाँ कोई कष्ट न हो तो हेम को भी साथ लेता जाऊँ। जासूसी में इन्हें कुछ दिलचस्पी आ रही है।"

"तुम जाना चाहती हो हेम ? अच्छा है लाल साहब को भी अकेले अच्छा न लगता होगा। मुझे कोई कष्ट न होगा।"

ट्रेन में

०००००

अपने सामान से लैस हो हेम और लाल गाड़ी पर बैठ गए। गाड़ी में, स्टेशन पर, पार्क में, सभा में, गोष्टी में चाहे जहाँ रहते, ये निराले रहते। यह नहीं कि सर्वसाधारण से वे अपने को पृथक् रखते अपितु यह कि उनकी रूप-रेखा कुछ ऐसी असाधरण थी कि उन्हें सर्वत्र एक विशिष्टि स्थान मिलता। जो आँखें उन्हें देखतीं वे कह उठतीं कि इनके समान ये ही हैं। व्यक्तरूप से लोग चाहे जो कहगे, परन्तु वास्तव में रूप और कविता का साम्राज्य विश्व-व्यापी है। अणु-परमाणु में रूप की आराधना है, कविता की गुंजार है।

तीन मील आने पर हेम ने कहा—"मुझे काठ की पुतली बना ले चल रहे हो कि कुछ बताओगे भी। कहाँ और किसलिए जाने बिना तो मुझे आनन्द नहीं आता, किसी को भी नहीं आ सकता।"

मुस्कुरा कर लाल ने कहा—"काठ की पुतली, बना दूं, प्रतिमा बना दूं, स्मारक बना दूं, चुपचाप बनी रहो। तुम्हें तो यही चाहिए, और आई हो आनंन्द उठाने या कुछ काम करने, कुछ कष्ट उठाने! बोलो।"

हेम—"अच्छा जो तुम्हारा जी चाहे बना लो। मुझे तुम्हारे ही आनन्द से विशेष प्रयोजन है।"

लाल—"मैं तो चाहता हूँ कि तुम्हें तुम्हारा बड़े-से-बड़ा आनन्द दे सकूँ, लेकिन उसे स्थगित करने वाली तुम्हीं हो।"

हेम—"वह तुम्हारा बड़े-से-बड़ा आनन्द होगा कि मेरा?"

लाल—"अर्थात् हम दोनों का है न?"

हेम—"होगा।"

लाल—"वाह रे होगा। अच्छा, तुम्हारी तबियत कुछ बहली तो है हेम?"

हेम ने स्नेह-स्निग्ध, प्रेम-मुग्ध भाव से कहा—"मुझे बड़ा अच्छा लगता है।

जिसकी छाया से, जिसकी स्मृतिमात्र से जीवन निर्वाण-सा निर्द्वन्द्व हो जाता है, उसके साक्षात् सामिप्य से भला कितना आनन्द न होगा।"

लाल ने हेम को अपने पुलकित पार्श्व में आलिंगित करते हुए कहा—"हृदयेश्वरी!"

देर बाद हेम ने कहा—"यह कैसा मंत्र है, अभिनय है, आवाहन है लाल।"

"यह जीवन का निस्पन्दन है, प्रेम का प्रस्फुरण है, उन्मीलन है, प्रमाण है।" लाल ने कहा।

विषय बदलते गए। पर कुछ देर बाद आ गई फिर परिहास की ही बातें। लाल ने कहा—"हमारी दुनिया कैसी निराली है?"

हेम—"वह क्या? क्या यही जासूसी दुनिया।"

लाल—"अभी तुम्हें कुछ पता भी है? मेरी दुनिया निराली है। सारी दुनिया उसे कुतूहल से, कसक से, उन्माद से, उत्साह से, श्रद्धा से, भक्ति से देखती है, देखती रह जाती है, देखकर तृप्त नहीं होती, निरन्तर देखती रहना चाहती है।"

हेम—"मुझे बहुत कुछ कहना नहीं आता। जो कुछ कहा है, उसमें और जितना जोड़ सकते हो जोड़ लो—उसे मेरी दुनिया समझो।"

लाल—"साफ कहो तुम्हारी दुनिया क्या है।"

हेम—"तुम भी साफ कहो।"

लाल—"मेरी दुनिया मुझसे पूछ रही है। मेरी दुनिया क्या है? वह अपने को अपनी आखों से देख नहीं सकती, अपने को समझ नहीं सकती। वह आत्म विस्मृत, आत्म-अविज्ञ है। इसी से तो और निराली, और पूर्ण, और पावन है। शशि की अमल ज्योत्स्ना, गगन की नीली काँति, पयोनिधि की मंजुल उर्मियाँ, वसन्त की विजय-विभूति, कुसुमाकर की मुसकान, पावस का प्रभात, तुषार-बिन्दु, विभूषित मृदुल दुर्वादल—पूछ रहे हैं मुझसे—मैं क्या हूँ? उन असंख्य दृगकोणों से नहीं पूछतीं, जो उन्हें अनिमेष देखा करते हैं, देखते रहना ही चाहते हैं।

हेम—"जासूसी, छोड़ कविता करने लगे।"

लाल—"हाँ, ऐसी कविता जिसका कोई पुरस्कार ही न सम्भव हो। लेकिन

क्या यही अच्छा है कि तुम सिनेमा के चल-चित्रों-सी, लोगों के हृदय लपेटे चली जाया करो।"

हेम—"मुझे देखने वाला एक है, पर तुम्हें देखने वालियाँ अनेक, सच कहती हूँ लाल, कोई ऐसी तरुणी, रमणी, पुरन्ध्री नहीं जो तुम्हारे रूप पर रीझ न जाती हो, खीझ न जाती हो, मुग्ध न हो जाता हो। देखो उनकी लालसा, आशा भरी दृगकोरों को।"

तीसरे स्टेशन पर गाड़ी रुकी। कुछ मुसाफिर उतरे, और कुछ चढ़े। वह फिर चल पड़ी। एक तरुणी गाड़ी में न बैठ सकी। वह अब भी गाड़ी के साथ दौड़ रही थी। गाड़ी ठसाठस भरी थी। हेम और लाल देख रहे थे। उसने किसी दरवाजे का छड़ पकड़ना चाहा। लाल का डिब्बा आगे था। उसके बढ़े हुए व्यग्र हाथों को उन्होंने पकड़ कर खींच लिया।

उसके कुछ आश्वस्त हो जाने पर, अभी वह हांफ ही रही थी, परन्तु अपनी असीम कृतज्ञता उनके किसी प्रश्न के उत्तर के क्रम में प्रकट करने को विह्वल हो रही थी।

लाल ने पूछा—"कहाँ जाना है तुम्हें ?"

वह उसाँस ले बोली—"दूर जाना है। ट्रेन छूटी ही थी, आपने जो कृपा की, उसे भूल नहीं सकती।"

जेब को टटोलती हुई व्यग्र हो बोली—"हाय मेरा मनीबेग भी गायब! अब क्या करूँ ?"

लाल ने कहा—"तुम घबराओ नहीं। पहले बताओ कहाँ जाना है तुम्हें ?"

तरुणी मौन हो गई। उसकी मुद्रा कह रही थी कि मैं कैसे बताऊँ। उसने कातर दृष्टि से हेम की ओर देखा, मानों कह रही हो तुम मेरे हृदय में आ जाओ और जो कुछ है बतादो।

हेम ने कहा—"बहन, तुम बहुत घबराई हो। कहो क्या बात है ?"

तरुणी ने सहमते हुए एक पत्र निकाला और हेम को दे दिया। हेम पढ़ने लगी, लिखा था—

मेरी चन्दो !

मैंने जो प्रेम का दुनिया में कदम रख दिया, वह भूल की, भारी भूल की

जानता नहीं था कि वह इतनी कटु, इतनी दाहक और इतनी कृतघ्न है। सुनता तो था परन्तु जानता तो ऐसा कभी न करता।

नहीं-नहीं, मैं गलत कह रहा हूँ। जानता होता तो भी आए बिना रह न सकता था। यह तो एक अनिवार्य प्राकृतिक प्रवाह, गति है। यह मेरी भूल नहीं। नाला मचलेगा क्यों न, निर्झर झिरझिराएगा क्यों न, उर्मियाँ उमँगेंगी क्यों न? अबाध्य व्यापक प्रेरणा जो है।

तुम थीं मेरा संसार, मेरा सर्वस्व, मेरा जीवन। यह आशा मुझे कब थी, कि तुम तुम नहीं—तुम एक विश्राम नहीं, विस्फोट हो, शांति नहीं, क्रांति हो, आलिंगन नहीं, अनुराग नहीं, चिर विच्छेद, चिर विक्षोभ हो।

लेकिन मैं ऐसा क्यों कह रहा हूँ? तुम जो हो वही हो, मधु हो, मधुमास हो। मुझे तुम्हें जब निरन्तर लिए रहना है, तो यह सब क्या? लेकिन क्या दीपक अपनी क्रोड़ में सतत जलन को नहीं लिए रहता? उसे वही शीतल है।

मेरी अन्तिम और नूतन घड़ियाँ आ गई हैं। मैं उस मंजिल पर हूँ, उस स्टेशन पर हूँ जहाँ अपने को जीवन के इस स्तर के नीचे विलीन कर देने में ही सुख प्रतीत होता है, हिमालय के सिखर पर हूँ, भूखा सिंह मेरी ओर मुख फैलाए टूट पड़ा है। नीचे कूद पड़ूँ, या उसके खूनी जबड़ों में चरचरा उठूँ।

एक बार चलते-चलते तुम्हें देख लेता, अपने प्रेम का रहस्य देख लेता, अपनी आशाओं···अभिलाषाओं का शृंगार देख लेता, अपनी कल्पना का चित्र देख लेता। दस तारीख को पूर्णिमा है। वह राका देखने पर फिर न तुम मुझे देख सकोगी, न मैं तुम्हें।

—तुम्हारा चन्द्रभूषण

हेम की आँखें भर आईं। पत्र उसने लाल की ओर बढ़ा दिया। वे भी पढ़ कर स्तिम्भित हो गए। कुछ देर में बोले—"तुम प्रेम करती थीं चन्द्र को और वह तुम्हें। फिर ऐसा क्यों हो रहा है?"

चन्द्रो बोली—"मैं कुछ नहीं कर रही हूँ। परिवार और समाज प्रेम और प्रतीति का हत्या कर रहा है, मेरा सर्वस्व हरण कर रहा है। मेरा क्या दोष?"

लाल ने कहा—"तुम्हारा क्या दोष? सब दोष तुम्हारा ही ठहरेगा अन्त

में। जब परिवार को, समाज को, संसार को ठहराने का साहस न हो, तो प्रेम करे ही क्यों। लेकिन यह समझ लो कि जो परिवार, समाज तथा संसार इस सच्चे प्रेम से ठुकराया जाया, वह ठुकराने ही योग्य होता है, जीवन की उर्वर शक्ति उसमें नहीं होती उसमें प्राणाहारी कीटाणु होते हैं।"

तरुणी उनके पैर पकड़ रोने लगी। वे उसे उठा आश्वासनपूर्ण स्वर में बोले—"रोओ नहीं। हममें बहुत-सी दुर्बलताएँ हैं जो हमारे संस्कारों में घुल-मिल-सी गई हैं। तुम्हें कल एक्सप्रेस में बैठा दूँगा तुम समय से पहले पहुँच जाओगी।"

आगे के स्टेशन पर जब गाड़ी रुकी, तो लाल ने कहा—"हेम, यहीं उतरना होगा।"

वह विस्मय से बोली—"यहीं ! क्यों ?"

लाल—"ऐसे ही।"

हेम—"तो यह···।"

लाल—"इसका प्रबन्ध मैं कर देता हूँ।"

वे तीनों गाड़ी से उतर गए। लाल ने स्टेशन मास्टर से कहा—"आपको झाँसी जाना है। चार बजे की एक्सप्रेस में इन्हें बैठा दीजिएगा। किसी तरह ये ट्रेन न खोने पावें।"

फिर उन्होंने अपने मनीबेग से सौ का नोट निकाल कर उसे दिया। चन्दो ने कहा—"इतना क्यों ?"

लाल बोले—"ऐसे ही। यह कोई बड़ी बात नहीं। हम तुम्हारे साथ चलते, लेकिन विवश हैं।" फिर उन्होंने उसका पता लिख लिया।

हेम ने अपने गले से मोती की माला उतार कर उसके गले में डाल दी। वह विस्मय और कृतज्ञता की मूक प्रतिमा हो गई।

हेम ने कहा—"बहन आश्चर्य न करो, कुछ अधिक कहने या करने की चेष्टा न करो। जब तुम्हारा ब्याह हो तो, हो सके तो हमें भी याद कर लेना।"

सरस सहवास

गाड़ी से उतर कर वे पैदल ही चले। कुछ दूर आने पर हेम ने जाना कि वे लोग देहात में चल रहे थे। पूछा—"कहाँ चल रहे है ?"

लाल ने कहा—"यहीं कहीं दो मील पर लक्ष्मीपुर में मेरे एक मित्र का मकान है। हम लोग कालेज से निकले तब से फिर न मिले।"

हेम—'वे क्या करते हैं ?"

लाल—"बहुत दिन हुए एक पत्र मिला था। फिर कोई समाचार न मिला। उसमें इतना ही लिखा था कि मैं देश-सेवा करना चाहता हूँ।"

हेम—"वे न मिले तो रहने का भी ठिकाना न लगेगा।"

लाल—"अजी यह देहात है, शहर नहीं। अतिथियों के लिए अब भी यहाँ स्थान है। जब कितने ढोंगिए और धूर्त भेष बदल यहाँ अपना जीवन यापन कर ले जाते हैं, तो भला हम लोग एक रात भी न टिकने पाएँगे।"

हेम—"तुम्हें रास्ता मालूम है ?"

लाल—"पढ़ते थे तो दो-एक बार आए थे। धुँधली-सी स्मृति है।"

हेम—"धुँधली की यह बेला कितनी सुन्दर है ? दूर तक खेतों की हरियाली, पक्षियों का चहचहाना, किसानों का घर जाना, कैसे मनोरम दृश्य हैं।"

लाल—"मुझे तो वृन्दावन की याद आ जाती है। जब श्रीकृष्ण गोपी-ग्वाल-बालों के साथ गौवें ले लौटते थे।"

हेम—"और वह शायद याद नहीं आती जब कृष्ण वट के नीचे मुरली बजाने लगते थे।"

लाल—"वाह री मेरी राधा !"

हेम—"मेरी राधा तो कह दिया कुछ मुरली भी बजानी जानते हो ?"

लाल—"मैं मुरली-उरली क्या जानूँ। सब दिन तो बजाई सीटी। कहो तो बजा दूँ।"

हेम—"रह गए बस वही इंस्पेक्टर के इंस्पेक्टर ! अच्छा अब कभी राधा-बाधा मत कहना ।"

लाल—"और जो मुरली सुना दूं ?"

हेम—"तो ठीक है ।"

लाल ने बैग से एक छोटी-सी मुरली निकाली और बोले—"आओ इस आम के नीचे बैठ जाओ । यह वृक्ष मुझे याद है । मैंने इसके आम खाए हैं ।"

दोनों बैठ गए । लाल धीरे-धीरे मुरली बजाने लगे । हेम मंत्र मुग्ध-सी बैठी रही । खूब बजाई । हेम राधा-सी मुग्ध हो कृष्ण लाल के कंधे पर नत हो गई ।

बज गई मुरली । हेम ने मानो जाग कर कहा—"लाल ! अरे तुम मुरली कब से बजाने लगे ? न कभी देखा, न सुना । तुम बड़े छिपे रुस्तम हो ।"

लाल ने मुस्करा कर कहा—"जानता था किसी राधा के लिए, किसी शकुन्तला के लिए, किसी सुभिद्रा के लिए, मुझे कृष्ण, दुष्यन्त, अर्जुन और न जाने क्या-क्या बनना होगा ?"

फिर वे आगे बढ़े । दूर तक मटर के लाल, सफेद फूल, सरसों के पीले-पीले फूल, जौ और गेहूँ की हरी-हरी बालियां किसी भी पुष्पित उद्यान की निन्दा कर रही थीं । अब उन पर गुप्त प्रणय के भावों-सी ओस की बूंदें आने लगी थीं ।

एक किसान से पूछा—"लक्ष्मीपुर गांव कौन-सा है ?"

वह बोला—"वह जो गाँव सामने है उसके आगे हैं बाबू जी । दूर नहीं है ।"

किसान अपनी राह गया । वे चलते रहे । मटर के खेत की रखवाली करती हुई एक कुमारी गा रही थी—आये वसन्त, पिया नहिं आए । कुछ दूर पर कोई नवयुवक गुनगुना रहा था—"आँखें रंगीली न भूलें सखी री ।"

हेम मुस्कुराई । लाल ने भी वैसे ही कहा—"सारे संसार में प्रेम की आग लगी है । तुम मृगनैनियां गजब करती हो । आग लगा दी है सारे संसार में अपनी रसीली आंखों से ।"

"जी हां, आप दूसरों के घर जलना तो देख नहीं पाते ।" हेम ने कहा ।

लाल ने कहा—"सच ?"

लक्ष्मीपुर गांव आ गया । अंधेरा भी हो चला था । लाल ने किसी से

पूछा—"लक्ष्मीपुर गाँव कौन-सा है ?"

उसने कहा—"यही है बाबूजी। किसके यहाँ जायँगे ?"

लाल बोले—"ज्योतिर्भूषण के यहाँ।"

"वह मकान है।"

कुछ आगे जाकर देखा वह नीम का पेड़, जिसके नीचे लाल ने जीवन की कुछ उत्साहपूर्ण घड़ियाँ बिताई थीं, आज भी अपनी शीतल छाया ले खड़ा था।

लाल की अतीत की स्मृतियाँ रंग-बिरंगी मछलियों की तरह मानस के निस्तल से स्तर पर आ तैरने लगी। नीम का चबूतरा, बैठक, मकान, ओसार सब सामने आने लगे।

वहाँ सभी चीजें साधारण थीं, लेकिन साफ-सुथरी। अपने स्वामी के प्रति वे परिष्कृत अभिरुचि एवं सात्विक प्रवृत्ति का परिचय दे रही थीं।

बैठक में एक लालटेन जल रही थी। वे चले गए और दरवाजे पर पुकारा—"कोई है ? ज्योतिर्भूषण जी हैं ?"

भीतर से कोई तरुणी आई और किवाड़ की आड़ में खड़ी हो गई, उसकी गोद में छोटा-सा बच्चा था उसने पूछा—"आप कौन है?"

लाल ने कहा—"बेटा, मैं ज्योतिर्भूषण का मित्र हूँ। वे कहाँ हैं ?"

तरुणी कुछ सामने हो गई। जरा-सा घूंघट नीचे कर लिया। देखा एक स्त्री भी उनके साथ थी। वह बोली—"आपने बड़ी कृपा की। आप ही का नाम लाल साहब है ?"

लाल—"जी हाँ! यह ज्योतिर्भूषण का बच्चा है ? आप मेरी भाभी हैं शायद ?"

एक स्नेहमयी पावन मुस्कान ने तरुणी के अधरों पर, आँखों पर छलक कर कहा—"हाँ।"

तरुणी ने कहा—"आइए भीतर। यह तो आप का घर है।"

लाल ने कहा—"बच्चे को हमें दे दो भाभी।" उसने प्रेम के उस भोले उपहार को उनके हाथों में बढ़ा दिया।

लाल ने कहा—"भाभी, पहले यह बता दो, भाई साहब हैं कि नहीं ?"

वह बोली—"हैं, रात को नहीं तो सुबह अवश्य आ जायँगे।"

एक चारपाई पड़ी थी। लाल साहब उसी पर बैठ गए। बच्चा उनकी गोद में अनिमेष उनका मुख देख रहा था। अपरिचित के चुंबन में उसे पिता की ही स्नेहमयी ममता मिल रही थी।

एक साफ सुथरी चटाई पड़ी थी। उसी पर हेम और वे बैठ गईं। लाल ने कहा—"आप लोग नीचे बैठ रहीं हैं, मैं भी वहीं बैठूँगा।"

"नहीं-नहीं, ऐसा नहीं हो सकता। हम आपको उच्च ही आसन देंगी, आप चाहे जो करें।"

लाल—"हम लोगों ने आपको लक्ष्मी माना है, देवी माना है और पूजा करते हैं। आपके बिना हम अधूरे है।"

वे मुस्करा उठीं। लाल साहब के शुभागमन एवं स्नेहसनी सलोनी बातों से उनके हर्ष और उल्लास की सीमा न रही। ज्योति ने (यही नाम था तरुणी का) हेम की ओर देखा। मन में कहा—"कैसी रूप-रानी है। साक्षात् रम्भा है, शची है; कितनी सुशील है; और यह लाल भी तो देवता हैं, इन्द्र है, अर्जुन है।

फिर व्यक्त कहा—"तो अपनी इन बहन को क्या कहूँगी बबुआ ?"

बहन और बबुआ! न जाने कितना स्नेह, कितनी ममता हेम और लाल के हृदय प्लावित किए देती थी, उतनी ही शायद जितनी भाभी के सम्बोधन से ज्योति को।

लाल ने तनिक मुस्कुरा कर कहा—"भाभी, अभी तो मैं ही नहीं जानता कि इन्हें मैं क्या कहूँ। इन्हीं से पूछ लेना।"

हेम पर सलज्ज मुस्कान खेल गई। ज्योति ने सस्मित दृष्टि से हेम की ओर देखा। देखा अभी सुन्दरी की माँग में सिन्दूर की सुहाग रेखा न थी।

ज्योति उठी। एक फूल के कटोरे में थोड़ी मिठाइयाँ ले आई। घड़े से पानी उड़ेल कर कहा—"बबुआ आइए हाथ पैर धो दूँ, तो कुछ जलपान कर लें।" यों कह उनके पैर की ओर हाथ बढ़ाया।

लाल ने उनका हाथ पकड़ कहा—"अरे भाभी, मुझे नरक में न ढकेलो।" वे हँस पड़ीं। जलपान के पश्चात् लाल ने कहा—"हेम तुम बना लो भोजन, या भाभी का हाथ ही जलवाओगी ?"

हेम बोल उठी—"मैं न बनाऊँगी तो क्या बहन को बनाने दूँगी ?"

ज्योति कह उठी—"नहीं-नहीं, आज तुम आई और मैं चौके में कर दूँ।

यह नहीं होगा। मैं बात-की-बात में बना लेती हूँ।"

हेम ने बच्चे को गोद में ले लिया। लाल ने हेम की ओर परिहास पूर्ण दृष्टि से देखते हुए धीरे से कहा—"लो अपने लाल को।" हेम पर लज्जा की जो लाली दौड़ गई, उसमें भावी खुशी से उद्वेलित हृदय का आभास था।

देखते-ही-देखते ज्योति ने भोजन बना लिया—दाल, भात, रोटी, तीन-चार तरह की भाजियाँ आदि-आदि। सब लोगों ने भोजन किया। लाल ने ग्रास-ग्रास के लिए भाभी को सहारा, बखाना।

भोजन समाप्त कर सोने के समय ज्योतिभूषण आए। बाहर से ही बात चीत सुनी। भीतर जाकर देखा अतीत की एक मादक,स्नेहमयी, अनुरागमयी स्मृति लाल के रूप में खड़ी थी। प्रेम विह्वल हो गले से लिपट गए। बहुत देर में अलग हुए। चारों आँखें सजल हो गईं।

वे बोले—"लाल तुम सपना हो गए। मुझे भूल ही गए?"

लाल ने कहा—"तुम नहीं भूल गए।"

ज्योति—"आज का दिन धन्य है। कैसे कहूँ कितना सुख हो रहा है। सुधि तो ली। भई राजा ठहरे।"

लाल—"केवल तुमसे मिलने रास्ता छोड़ चले आए। ऐसे बखेड़े हैं जीवन में कि ऐसे मित्रों से भेंट नहीं हो पाती है। सच कहता हूँ भूषण, कभी-कभी बड़ा दुःख होता है और राजा तो गए-बीते हैं ही, लेकिन हमारे नेता भी जो अपने मित्रों को भूल जाएँ"

ज्यो०—"भोजन कर चुके हो।"

ला०—"खूब, तुम्हारी राह कब तक देखता?"

ज्यो०—"तुम्हारी भाभी की कृपा से पाहुनों की ओर से मैं निश्चिन्त रहता हूँ।"

ज्यो०—"ये देवीजी?"

ज्योति—"मुझसे पूछो, मेरी छोटी बहन है।"

ला०—"हाँ, उन्हीं से पूछो, मैं नहीं जानता।"

ज्योतिभूषण ने भी भोजन कर लिया। देर तक घर में ही बातें होती रहीं। उनके पूरे समाचार पूछे, लाल ने अपनी कथा कही और उन हत्याओं का भी विवरण सुनाया।

बहुत देर बाद वे बैठक में सोने गए और वे घर में। लेकिन बाहर भीतर कोई न सो सका, बातें ही होती रहीं। पिछले पहर एक स्वप्निल निद्रा आई।

प्रातःकाल नित्यकृत्य से निवृत्त हो जलपान कर फिर बैठक हुई। उन्हीं पाँचों व्यक्तियों की समिति थी। प्रेसीडेण्ट वही नन्हा-नटवर ज्योति का मुकुन्द था।

लाल ने कहा—"तुमने बहुत बड़ा काम किया है ज्योतिभूषण! कई बार जेल गए। लेकिन यह जो ग्राम संगठित हो नूतन आयोजनाएँ कार्य रूप में परिणत कर रहे हैं, यह साधारण श्रम एवं सहृदयता का विषय नहीं है। जहाँ इतने मत, जात-पाँत, छुआछूत और ढोंग हैं, ऐसे भारत का नेतृत्व सब लोग नहीं कर सकते। हाँ, एक बात है कि यहाँ के लोगों में जो श्रद्धा है वह किसी भी इतर जाति में नहीं मिल सकती और सब बातें तो निराशा-जनक ही हैं, जीवन की आग ठंडी-सी हो गई है, आत्म-सम्मान की भावना सो गई है, संगठन एवं एकता का भाव पालायन कर गया है, अपना अतीत भुला दिया गया है, दब्बूपन ने सबको दबोच लिया है।"

ज्योभिूषण बोले—"हाँ, तभी तो अन्य जातियों के सुधार में जहाँ दस वर्ष लगेंगे, यहाँ कम-से-कम तीस-चालीस वर्ष तो अवश्य ही चाहिएँ। लेकिन लाल, तुमने जो काम किया है, वह अपना एक विशेष महत्व रखता है। काजल की कोठरी में रहकर तुमने अपने को केवल काजल से ही नहीं बचाया, प्रत्युत उसे उज्वल भी बनाया। इसका बहुत बड़ा प्रभाव पड़ा है। यदि दो-दो वर्ष भी तुम्हें प्रति प्रान्त में रहना पड़े तो रात का दिन हो जाय। पुलिस विभाग वही हो जाय जैसा उसे होना चाहिए। कसाइयों के सदन वाल्मीकि महर्षि के आश्रम हो जाएँ।"

मुकुन्द विहँसकर लाल के गले में लिपट गया। मानो अपने पिता का सामोद अनुमोदन कर रहा हो। फिर देर तक बातें होने के बाद लाल ने कहा—"कहने में दुःख तो होता है, पर कहना भी पड़ रहा है।"

ज्योतिभूषण—"वह भी कह डालो।"

लाल—"इसी एक बजे की गाड़ी पर मुझे बिठा दो।"

ज्यो०—"तो इसके लिए इनसे पूछो, जिनके तुम पाहुने हो।"

ज्यो०—"ऐसा कैसे होगा बबुआ? यह सुनते ही हृदय धड़क उठा।"

लाल०—"मैंने तो सब कुछ कह दिया भाभी। क्या मेरा मन जाने को होता है। मन नहीं जायगा, शरीर जायगा। जितने दिन तुम्हारे साथ रहता, हाथ का भोजन करता, उतने दिन स्वर्ग में रहता।"

ज्यो०—"तो दो-एक दिन में तुम्हारा काम न बिगड़ जायगा। ऐसा ही है तो कल शाम की गाड़ी से चले जाना। मटर खिला दूँ, गन्ने का ताजा सर्बत पिला दूँ, देहात का कुछ सत्कार कर दूँ तो जाना।"

आज दस ग्रामों की सभा भी होने वाली है। तुम्हारा रहना आवश्यक है। कुछ बड़े-बड़े नेता भी पधारने की कृपा करेंगे।

ग्यारह बजे तक ये लोग भोजन से छुट्टी पा सभा स्थान को चले। एक अमराई में मंच तैयार था। पेड़ों की सघन छाया का पाण्डाल था। सहस्त्रों की भीड़ एकत्र थी। ग्रामसंगठन, कृषि-उन्नति आदि-आदि पर माननीय नेताओं ने अपने भाषण दिए और ज्योतिभूंषण के श्रम और कार्यावली की भूरि-भूरि प्रशंसा की। सभा को पण्डित जवाहर लाल नेहरू एवं राजेन्द्र बाबू के भाषण सुनने तथा दर्शन करने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ।

लाल ने भी मंच पर खड़े हो बड़ा ही ओजस्वी आकषक भाषण दिया। उन्होंने ग्राम संगठन एवं कृषि-उन्नति पर जोर से कहने के बाद कहा—"हमारे नेताओं ने हमारे तथा हमारी स्वतन्त्रता के लिए जो कष्ट सहे, जो युद्ध किया वह हमसे छिपा नहीं है। यद्यपि अभी देहातों में समाचार-पत्रों तथा सभा-सोसायटियों के अभाव से सब समाचार देर में फैलते हैं, परन्तु हमारे नेताओं का कुछ ऐसा प्रकाश है जो सर्वत्र सूर्योदय के समाम फैल जाता है।

नेताओं को जो इतने दिनों तक युद्ध करना पड़ा है, इतना कष्ट सहना पड़ा है, उसका यही कारण है कि म्यान में रक्खे-रक्खे राजपूतों की तलवारों में मुरचा लग गया। उनकी रण-लिप्सा रेणु-लिप्त हो गई; उनकी भुजाओं में वह फड़क नहीं रह गई. यदि रहती आततायियों की ऐसी न चलती, इतने निर्दोष प्राणियों के रक्त न बहाए जाते।

जब तक विश्व की विषमताएँ रहेंगी, अत्याचारी और आयताई रहेंगे ही तब तक तलवारें म्यानमें नहीं सो सकतीं, निशस्त्रीकरण में भी शस्त्री करण, होगा। यह हमें समझ लेना चाहिए कि अहिंसा में भी हिंसा और हिंसा में भी

अहिंसा है। जब हम अपनी तलवारें आततायियों के रक्त से रँगते हैं, तो यह समझना चाहिए कि हम अहिंसा में ही हैं और शान्ति की ही संस्थापना करते हैं।

हमारे चिरस्मरणीय नेताओं के निहत्थे युद्ध ने जो विजय पानी चाहिये थी पायी, यद्यपि वहाँ भी कम कुर्बानियां नहीं करनी पड़ीं। उन्होंने हमें स्वतंत्रता की पार तक पहुँचा दिया। हम कितनी शताब्दियों के बाद स्वतंत्रता पा रहे हैं। परन्तु अब हमें अपनी तलवारें निकाल लेनी चाहिएँ, उन्हें शाणा हार चढ़ा लेना चाहिए, अपने भुजदण्डों को फड़का लेना चाहिए और उस स्वतंत्रता के पुजारी ताण्डव महाराणा प्रताप का आह्वान कर लेना चाहिए। आतताई शत्रुओं का सामना करना है, विश्व का नेतृत्व करना है, विश्व में शान्ति का प्रसार करना है, वैभव के विषम वितरण में समता ला उन बेकलों में भी जीवन की मुस्कान लानी है, जहाँ अविश्रान्त शताब्दियों से घोर विशाप की ही छाया घनीभूत है।

× × × ×

हेम ने भी मंच पर खड़ी हो भाषा और ग्राम सुधार के लिए दस सहस्त्र रुपयों का दान दिया।

पण्डितजी ने अन्त में लाल और हेम को बधाइयाँ देते हुए कहा—"हम लोग अपने अविरत संग्राम में राजपूतों तथा उनकी तलवारों से लाभ न उठा सके। परन्तु अब बिना उनके काम नहीं चल सकता। अब मेवाड़-रणरंगिनी के चमक जाने का समय आ गया है। जब मैं लाल साहब जैसे कर्मिष्ठ राजपूत कर्मचारी तथा हेम जैसी देवियों को देखता हूँ, तो अपना स्वर्णातीत सामने नाचने लगता है—चूड़ावत और हाड़ारानी फिर हमारे सामने आ जाते हैं।"

× × × ×

सभा विसर्जित हुई, सब लोग विदा हुए। दूसरा दिन आया। मटर की फलियों और ईख के रस आदि से ज्योतिर्भूषण ने पाहुनों का सत्कार किया और किया हृदय के उस रस से जो अमृत का भी अमृत है।

बहुत-सी बातें हुईं। सब स्थानों को देखा, मधुर पीड़ा ले वहाँ बैठे जहाँ वर्षों पूर्व खेले थे, हँसे थे, गाये थे। सब याद कर कर अपने अतीत को गुदगुदाया।

विदा की बेला आई। हेम ने मुकुन्द को उठा गोद में ले मोतियों का एक हार उसके गले में डाल दिया। ज्योति ने एक माला निकाल हेम को पहना दी और अपनी भावी देवरानी तथा देवर से कहा—"देखो ब्याह की खबर देना भूलना मत।" यही बात ज्योतिर्भूषण ने भी दुहराई। गले लगे, चुंबन लिए, आँखों में आँसू छोड़, आँखों में आँसू ले बिदा हो गये।

डायमंड पार्क

० ० ० ० ० ० ०

दिवाकरजी का पता हेम को याद नहीं था। इसीसे लाल ने लिख लिया था परन्तु वह चिट न जाने कहाँ गिर गई। बड़ी परेशानी हुई। मुहल्ले-मुहल्ले में पूछना पड़ता। कई मुहल्ले छान डाले, कहीं पता न चला।

दोपहर बीत गई। लाल ने कहा—"चलो होटल में कुछ खा-पी कर, विश्राम कर लें, फिर ढूंढ़ने निकलेंगे।"

सनलाइट होटल में गए। स्नान, भोजन कर दो घण्टे विश्राम किया। तीन बजे उठकर फिर चक्कर लगाने लगे। पाँच बजने को आए, पर पता न चला।

इस समय सन्ध्या की सुनहरी बेला में वे डायमन्ड पार्क में थे। कहा जाता है कि संध्या समय इस पार्क में सुन्दर-सुन्दरियों की जो भीड़ एकत्र हो जाती है, वद शायद कहीं नहीं होती। बंगाली, पारसी, काश्मीरी, ऐंग्लो-इन्डियन सभी सुन्दरियों, कामिनियों, लेडियों की प्रदर्शिनी-सी लग जाया करती है। किसी विकसित पुष्पोद्यान में रंगबिरंगी तितलियों का जो दृश्य आंखों को चूम लेता है, वही यहाँ भी था।

तितलियाँ! कितनी अच्छी लगती हैं, उड़ती हुई ये तितिलियाँ, उठते हुए फूलों-सी ये परियाँ; ये रूप-रानियाँ।

किन्तु क्या इनमें वह वशीकरण, वह मादक आकर्षकता है जो इन सुन्दर तितिलियों में? क्या ये भी जीवन को क्रीड़ा-कंदुक बना लेती हैं, उन्मत्त प्रमत्त बना देती हैं। ये तो पकड़ में आकर भी पकड़ में नहीं आतीं। वे फूलों का रस ले लेती हैं, पर वे हँसते ही रहते हैं। परन्तु ये जीवन का सारा रस चूस उसे कंकाल बना देती है? वे तो बस एक रस, परन्तु ये एक ही पात्र में विष, अमृत और मद लिए रहती हैं। ये तितिलियाँ बड़ी विलक्षण और शक्तिशालिनी होती हैं।

हाँ, तो देखिए इन सुन्दर-तितलियों की विविध टोलियाँ—टहलतीं, मचलतीं, मुसकातीं, हँसतीं, अँगड़ातीं, इठलाती, बलखातीं······। देखिए इन तरल-तरंगित सुनहरी किरणों में नहाते हुए। देखिए इन लाल रश्मियों को, इन रूपों पर लोट-पोट होते हुए। सब देव, भी दीवाने हैं, तो मनुष्यों की क्या चर्चा रही ?

देखिए, खूब देखिए, भर आँखों से देखिए। क्षीर-फैन्सी, गुलाब-सी, सेव-सी, अँगूर-सी, सोनजुही-सी, कुन्दन कली-सी, घनश्याम-सी, अलसी-सी, गेहूँ-सी, देखिए! देखिए चंचल नयन, भोले नयन, शर्मीले नयन, रसीले नयन! देखिए, देखिए द्वादश, त्रयोदश, चतुर्दश, षोडश कला देखिए, और ऊपर जाकर जो जी चाहे। मुकुलित, अर्द्ध-मुकुलित, पुष्पित, मुकुलितो-परांत मुकुलित, पुष्पितोपरान्त-पुष्पित तारूण्य देखिए।

देखिए शरद शशि को देखिए पड़वा से लेकर चतुर्दशी तक। देख लिया? तो अब देखिए पूर्णेन्दु से पूर्णेन्दु भी सुन्दर सरस हेम को! सच? हाँ सच?

वाह रे विश्व-काव्य! वाह रे अनूप रूप का वाङ्मय! वाह रे अप्रतिम, अनुपम, अपार रूप! सुनिए लाल साहब की—

"देखो हेम, तुम जानती हो तुम कहाँ थे ?"

हेम—"पार्क में हूँ और कहाँ!"

लाल—"कौन पार्क ?"

हेम—"डायमंड पार्क न ?"

लाल—"हाँ, डायामण्ड पार्क, सुन्दरियों की ऐसी प्रदर्शिनी कहीं नहीं लगती, यह तुमने सुना है!

हेम—"मैंने नहीं सुना! तो यही प्रदर्शिनी देखने आए हो? तुम को तो बस सुन्दरियाँ, सुन्दरियाँ, सुन्दरियाँ······!"

लाल—"नहीं, नहीं हेम, मैं दिखलाने आया हूँ। देखा तुमने ?"

हेम—"देखा।"

लाल—"क्या देखा ?"

हेम—"सुन्दरियों को देखा।"

लाल—"नहीं, यह देखो कि इस सर्वश्रेष्ठ प्रदर्शिनी में भी हेम अकेली है,

निराली है, निरुपम है। तुम्हें दिखाने को ले आया हूँ। अपनी आँखों से देखो, फिर देख सको तो औरों की आँखों से देखो। वाह!"

हेम ने छनकती हुई मुसकान से कहा—"तुम तो अपनी हेम को सातवें आसमान में उठा ले गए। तुम्हारी हेम से तो मुझे द्वेष होता है।"

लाल—"और तुम्हारे लाल से क्या मुझे नहीं। अच्छा, आओ जरा हम लोग हाथ मिलाकर चलें।"

लाल ने हेम का हाथ पकड़ लिया। हेम ने मीठी झुँझलाहट भरी मृदुल मुसकान से कहा—"तुम बड़े रसिया हो लाल। मैं रसिया को नारी बनाऊँगी।"

कैसी जोड़ी है लाल और हेम की। देखिए डायमण्ड पार्क के ऐसी सुन्दर अनेक विस्मित आँखों के साथ देखिए देखिए! डायमण्ड पार्क को अपने सौंदर्य पर बड़ा हर्ष था, लेकिन आज उसे मात मिल गई।

लाल आज अपने राजपूती वेश में हैं—जैपुरी लहरिया साफा, कोट-ब्रीजेज, भरा हुआ गोरा-गोरा चेहरा, भौंहों के नीचे लम्बी प्रभावोत्पादक कमल की सी आँखें, भरा-पुरा छड़ीला मस्त शरीर, चौड़ी छाती ऊपर गले में तलवार पुरुष सौंदर्य का कैसा अप्रतिम निदर्शन है।

किसी ने आकर पूछा—"कल आप किसे ढूँढ़ रहे थे?"

लाल ने कहा—"एक दिवाकर जी हैं।"

उसने जरा सोचकर कहा—"चौक में डिमार्क होटल के पास एक दिवाकर जी रहते हैं। बहुत सम्भव है वे ही हों?"

हेम और लाल को जैसे कुछ विश्राम की साँस मिल गई हो। वे तुरन्त डायमण्ड पार्क को सूना कर डिमार्क होटल को चले। एक रिक्शे पर बैठ गए। एक घण्टे के भीतर वे वहाँ पहुँच गए। किसी से पूछा डरते-डरते—"यहाँ कोई दिवाकर जी रहते हैं?"

उत्तर की प्रतीक्षा भी डर से ही हो रही थी। उसने कहा—"यही मकान है।"

जान-में-जान आई। सीढ़ी से ऊपर जा दिवाकर को पुकारा। एक नौकर आया। पूछा—"बाबूजी आप कहाँ से आये हैं?"

"लखनऊ से कुँवर साहब के यहाँ से।"

उसने उत्फुल्ल हो उन्हें एक सुसज्जित कमरे में बिठाया। भीतर खबर दी।

चाँदी की तश्तरियों में मिठाइयाँ और चाँदी के गिलास में पानी ले आया। ऐसा आग्रह किया कि उन्हें पानी पीना ही पड़ा।

थोड़ी देर में एक बुढ़िया आई। उन्होंने उसे अभिनन्दन किया। बड़े स्नेह से उसने कुशल-मंगल और परिचय पूछा। वह दिवाकर की माँ थीं।

उन्होंने कहा—"बेटा तो कुँवर साहब के ही यहाँ गया है, लौटा नहीं। दो महीने बीतेंगे। क्या वहाँ नहीं है?"

लाल बोले—"नहीं माँ, वहाँ तो नहीं है। उन्हीं से मिलने आए थे।"

लाल की आकृति क्षोभ भरी आशंका से संदिग्ध हो गई। पूछा—"माँ, तुम गंगोली गुप्ता को जानती हो?"

माँ—"काहे को बेटा?"

लाल—"ऐसे ही पूछ रहा हूँ।"

लाल ने समझ लिया कि अभी बुढ़िया को कुँवर साहब की हत्या का पता नहीं है। लेकिन इस समय उस स्नेहपूर्वक हृदय को उन्होंने मर्माहित करना नहीं चाहा।

बुढ़िया ने कहा—"बेटा, गंगोली गुप्ता यहाँ एक इन्स्पेक्टर था। उसका सारा परिवार कुछ दिनों से यहीं रहने लगा था। उसके घर से हम लोगों से बहुत बैर चला आता था। एक मकान के लिए लड़ाई हुई। उसी से झगड़ा बढ़ता गया। बेटे के तो वह प्राणों का भूखा था। लेकिन कुछ कर न पाया। क्या आजकल वह वहाँ ही है।"

लाल ने कहा—"हाँ, माँ, वहीं हैं?"

लाल की वह आशंका घनीभूत हो गई। बुढ़िया बोली—"बेटा, वह बड़ा दुष्ट है, बड़ा नीच है। कितनी बार मेरे घर पर डाका डलवाना चाहा। लेकिन बेटे के सामने उसकी एक न चली। बहुत से गुण्डे बदमाश उसके साथी हैं। भला अफसर को क्या ऐसा होना चाहिए?"

रात को भोजन कर विश्राम किया। हेम को शायद नींद आई हो, लेकिन लाल तो जागते ही रहे। वे अपने सुराग के ऊहापोह, उधेड़-बुन में लगे रहे।

दूसरे दिन वे वृद्धा के आग्रह पर भी न रुक सके। जलपान कर आठ बजे

रवाना हो गए। चलते-चलते दिवाकर के बड़े भाई भी आ गए। उनसे बहुत-सी बातें हुईं। उनसे अपने यहाँ का संक्षिप्त वर्णन लाल ने कह दिया और विनीत आग्रह से उनसे छुट्टी ली। बारह बजे की ट्रेन से वे घर चले।

रास्ते में हेम ने पूछा—"तुम दिवाकर जी के न होने और गुप्ता के बैर की बात सुन इतने संदिग्ध और शंकालु क्यों हो गये ?"

"बड़े रहस्य की बात है हेम। देखो सामने क्या आता है ?"

घर पहुँचने पर देखा दिवाकर के यहाँ से एक पत्र भी आया था। उसमें अन्यान्य बातों के उपरान्त उनके विषय में पूछा गया था।

डान्स पार्टी

० ० ० ० ० ० ०

लाल के एक बुद्धू से जो मिस मोरियो के मकान के समीप रहने लगा था, उनसे कुछ परिचय हो चला था।

लाल ने आज उससे देर तक बातें कीं। वह मुस्कराता जाता था, वे कहते जाते थे, लेकिन क्या बताऊँ, कुछ सुन तो पड़ा नहीं; बस इतना सुना गया—"लाइट बुझ जाएगी ? हाँ आप न रहेंगे ? नहीं।"

यहाँ से वे फिर पीली कोठी गए। देर तक बैठे रहे। प्रेमलता से बातें होती रहीं। प्रेम ने कहा—"लाल साहब, हमारी हेम का मन बहल गया है, इस यात्रा से। वह प्रसन्न है। बड़ी सुन्दर यात्रा हुई। उसमें ज्योतिभूंषण के यहाँ की पहुनई का तो कहना ही क्या ?"

फिर लाल और हेम में देर तक एकान्त में बातें होती रहीं। लाल ने कहा—"तुम भी चलोगी।"

"जैसा कहो तुम ?"

"जी चाहे तो चलो।"

"चलूँगी। तुम सचमुच न रहोगे ?"

"लोग जानेंगे मैं नहीं हूँ, लेकिन रहूँगा।"

हेम खिलखिला पड़ी।

आज लाल साहब के यहाँ अंग्रेजी डान्स होने वाला था। डान्स पार्टी को निमन्त्रण भी था। इसमें थोड़े-से चुने-चुनाए व्यक्ति थे। मिस मोरियो, श्रीमती हेम, दो और तरुणियाँ और दो-तीन बुद्धू बस।

एक कमरा खूब सजा-बजा था। फर्श की सजावट बड़ी अच्छी थी। पैर फिसला जा रहा था।

आठ बजे रात पार्टी आ गई। बुद्धू ने उसका स्वागत किया। एक सुन्दर

वर्तुलाकार मेज के चारों ओर कुर्सियों पर आसन लगे थे। सिग्रेट के डिब्बे खाली होने लगे। कमरा धुएँ से गूंजने लगा, कहकहे से कहकहाने लगा।

बिजली की रोशनी में वह नवयुवक और नवयुवतियों की पार्टी तरह-तरह के चटकीले लिबास में कैसी अच्छी लग रही थी, खिलते हुए फूलों सी।

थोड़ी ही देर में लाल साहब ने आकर अभिवादन किया। और कहा—"आप लोगों ने दर्शन दे मुझ पर बड़ी कृपा की। पर इस समय मैं केवल क्षमा माँगने आया हूँ। मुझे बड़े जरूरी काम से अभी बाहर रवाना हो जाना है। मुझे इस अनुपस्थिति के लिए क्षमा कीजियेगा। मैं इस समय आप लोगों को छोड़ विवश होकर ही जा रहा हूँ। परन्तु मुझे संतोष तभी होगा जब आज के उत्सव में कोई अभाव न आयेगा। अपनी अनुपस्थिति से जो क्षति मुझे उठानी पड़ेगी वह यह सुन कर पूरी हो जायगी।"

लाल साहब रवाना हो गये। तब तक बुद्धू ने सुन्दर सुस्वादु, सुगन्धित, वाष्पोच्छवास समन्वित व्यंजनों की थालियाँ टेबुल पर सजा दीं। ह्विस्की, बीयर, सोडे आदि की बोतलें और प्यालियाँ भी लगा दीं। ग्रास पर ग्रास, प्याले पर प्यालियाँ चलने लगीं। बीच-बीच में अरुण तरुण अधरों की मधु मुसक्यानें, रसीली आँखों की लाल लहरियों एवं उल्लास के कहकहे उत्साह और उमंगों को द्विगुण-त्रिगुण कर जाते।

डिनर समाप्त हुआ। हाथ मुँह धो पान के बीड़े और सिग्रेट चलने लगे। फिर डाँस की तैयारी होने लगी। उसी समय एक बुद्धू ने अपने कोट के पाकेट से कुछ गिन्नियाँ, सोने की सिकड़ियाँ और मोती के हार निकाल दूसरे बुद्धू से कहा—"इन्हें कहीं रख आओ, नहीं बड़ी असुविधा होगी।" ये बुद्धू सेठ जी थे शायद सोचते थे।

दूसरे बुद्धू ने कथा—"भई, यह प्रदर्शिनी किसलिए लगा दी। जानते तो हैं कि आप सेठ हैं। क्या ऐसी असुविधा हो जाएगी?"

प्रधान बुद्धू ने कहा—"तुम तो मुझे बनाने लगे। अच्छा रहने दो।"

"नहीं नहीं, दो मैं रख ही आऊं।"

"नहीं अब नहीं दूँगा, रहने दो।"

उसने सबको फिर अपने पाकेट में समेट लिया। डाँस होने लगा। हेम

थी तो पार्टी में, परन्तु इस समय द्रष्टा ही थी, नर्तकी नहीं। वह डांस जानती भी न थी। रंगरेलियाँ होने लगीं, चटक-मटक के साथ। गाने भी हो रहे थे, अंग्रेजी गाने।

जब खूब समा बँध गया, तो तो लाइट बुझ गई। लोग खिन्न हो गए। रंग में भंग पड़ गया। डाँस बन्द हो गया। बुद्धू ने कहा—"बिजली लीक कर गई। अभी ठीक होती है आप लोग बैठें न, नहीं तो शिथिलता आ जायगी।"

उसी अँधेरे में लोग खड़े रहे, इधर-उधर होते रहे। सेठ बुद्धू को जान पड़ा कि उसके गले में किसी ने सुई चुभा दी। उसने झट चुभाने वाले का हाथ पकड़ते-पकड़ते छोड़ दिया, लेकिन उसके पाकेट से एक रूमाल निकाल लिया, जिसे उसने ही डाल दिया था।

लाइट देर में आई। नृत्य बन्द ही हो गया। लोग बिदा हो गए। बुद्धू के सुई चुभने की दवा डाक्टर सिनहा ने तुरन्त की। वे एक दूसरे कमरे में लाल के साथ बैठे थे। लाल वहीं छिपे थे, कहीं गए न थे। उन्होंने बुद्धू से सारा वृतान्त पूछा। उसने बताया और वह रूमाल दिखा दिया।"

तीसरे दिन लाल मिस मोरियो के घर पहुंचे। उन्होंने बड़े हर्ष से स्वागत किया और उन्हें ले जाकर ऊपरी तल्ले पर बिठाया। चाय पीते-पीते बातें हो रही थीं। लाल ने कहा—"उस दिन तो मुझे जाना ही पड़ा। क्या समाचार है? सुना रंग में भंग पड़ गया।"

मुस्कुराकर मोरियो ने कहा—"क्या बताऊँ लाल साहब, बिजली लीक कर गई; सब कुछ चौपट हो गया। बड़ा अच्छा समा बँधा था। अशुभ तो पहले ही हुआ जब आपके जाने की बात आई।"

लाल—"मुझसे अशुभ हुआ, होता ही गया।"

मोरियो—"न आप जाते, न ऐसा होता।"

ला०—"वह तो होता ही। जाने की बात क्या बताऊँ, पछताता ही गया।" कुछ लम्बी-सी साँस लेकर लाल ने कहा—"अच्छा, अब मुझे आज्ञा दीजिए।"

मोरियो ने अपने आग्रह में मंद मुसकान मिलाकर कहा—"आप तो मेरे

यहाँ आए कि चलने की धुन सवार हुई। पता नहीं मैं क्यों नहीं आपको प्रसन्न कर पाती।"

लाल—"ऐसा आप क्यों कह रही हैं ?"

मोरियो—"सच कहती हूँ लाल साहब। मुझे यही लालसा रहती है कि कभी आपको खुश कर पाती।"

लाल—"मुझे आप नाखुश कैसे समझती हैं ?"

मो०—"यह भी क्या कोई समझने की बात है ? आँखें-आँखों की बातें समझ जाती हैं, मन-मन की जान लेता है। जबान बेचारी क्या बताए ?"

ला०—"क्या इन सूत्रों से आपने मुझे वैसा ही पाया, जैसा कहती हैं ?"

मो०—"क्या आप नहीं जानते कि मैं आपको किसी भी तरह प्रसन्न करना चाहती हूँ, कितना चाहती हूँ ? न जानते हों तब तो कुशल है और जानकर भी इस तरह हैं, तो मेरा दुर्भाग्य है। लाल साहब, आप तो मनोविज्ञान के पूरे पण्डित हैं, यह तो बताइए कि पुरुष का दिल कठोर होता है, या स्त्री का।"

लाल०—"आपने अपने अनुभव से क्या जाना है और क्या पुस्तकों में पाया है ?"

मो०—"पहले मैंने प्रश्न किया, पहले आपको उत्तर देना चाहिए।"

लाल—"मेरा उत्तर कहीं आपका दिल न दुखा दे।"

मो०—"ऐसा भी हो सकता है कभी ?"

ला०—"मेरी समझ में तो आप ही लोगों का हृदय कोमल होते हुए भी कठोर होता है।"

लाल मुस्कुरा उठे, मोरियो कुछ हँस पड़ी और बोली—"मैं कोई प्रत्यक्ष प्रमाण रक्खूँ, तो आपको मानना पड़ेगा।"

"अच्छा पाँच मिनट क्षमा करेंगे। जरा मैं कपड़े बदल आऊँ।"

यों कह मोरियो किसी दूसरे कमरे में चली गई। दस बारह मिनट बाद आई तो बिल्कुल बदली हुई। दूसरा कोट, दूसरी साड़ी, और दूसरा ही ठाट-बाट, चमकती, चटकती। लाल ने कुछ चकित दृष्टि से देखा।

शृंगार भी कैसा जादू है, कैसा उदय है। पीतल को सोना बना दे और सोने में सुगन्ध डाल दे। खिलता तो यह सर्वत्र ही है, लेकिन जब यह किसी नवतरुणी की लज्जा-सज्जा करता है, तब तो गजब कर देता है, तब इसकी शक्ति अपरिमेय हो जाती है, तब यह जादू का काम करता है।

लाल ने कहा—"अच्छा अब तो कपड़े बदल आईं।"

एक मुस्कुराहट, एक रसीली चितवन, एक भाव भंगी तरुण हृदय के नेपथ्य गृह से कपट ले और उसे अपने शब्दों में लपेट हाथ लाल साहब के कंधों पर रख दिए।

तमादी वारंट

बहुत दिनों का वारंट था। तमादी यों था कि अभियुक्त जिसके नाम वारंट था, कहीं मर गया था। ऐसी ही विज्ञप्ति हो गई थी।

उसी वारंट को लाल साहब दफ्तर में ढूंढ़ रहे थे। जब वे दफ्तर में थे, तभी अर्दली ने आकर कहा—"सरकार, आपको साहब बुला रहे हैं।"

उन्होंने कहा—"जाओ साहब से पूछ आओ। कुछ रुक कर आऊँ तो कोई हर्ज तो नहीं है?"

अर्दली ने तुरन्त साहब के यहाँ जाकर कहा—"हुजूर, उन्होंने पूछा है, कुछ रुक कर आऊँ, तो कोई हर्ज तो नहीं?"

साहब ने सामने के कागज पर आखें टिकाये ही पूछा—"कहाँ हैं, क्या कर रहे हैं?"

अर्दली ने निवेदन किया—"हुजूर, दफ्तर की जाँच कर रहे हैं।"

वैसे ही साहब ने फिर कहा—"अच्छा, रुक कर ही आएँगे।"

अर्दली फिर लाल साहब के यहाँ पहुँचा और बोला—"सरकार ने कहा है, अच्छा रुक कर ही आएँगे।"

"अच्छा।"

वह सलाम कर चला गया। लाल साहब अपने काम में लगे रहे। कुछ देर बाद एक जीर्ण-शीर्ण-सा कागज का टुकड़ा मिला। पढ़ा, तो आकृति जगमगा गई।

इतने सुन्दर-सुन्दर चटकीले चमकीले शोभन वर्णों से मुद्रित कितने पत्र हाथ में आए, अपनी कहानी आँखों के माध्यम से मन में कही, पिरोयी, उत्तीर्ण की, पर लाल को इतना प्रभावित न किया, जितना इस विपक्ष पत्र ने। उसे अपने पाकेट में रक्खा और साहब के पास चले।

साहब ने लाल की ओर देखकर कहा—"आज बहुत खुश हो लाल ! खबरें अच्छी हैं, इसमें तो संदेह नहीं ।"

लाल ने कुछ मुस्करा कर कहा—"अभी क्या अच्छी कहूँ, क्या बुरी ।"

साहब—"तुम तो तब कहोगे, जब सब कुछ कर चुकोगे। दफ्तर में क्या कर रहे थे ?"

ला०—"एक कागज ढूँढ़ रहा था ।"

सा०—"मिला ?"

ला०—"जी हाँ ।"

सा०—"कौन सा कागज ?"

वारंट सामने रखते हुए लाल ने कहा—"यही वारंट ।"

उसे देख विस्मय के साथ लाल का मुख देखते हुए साहब ने कहा—"यह वारंट । यह तो तमादी है । अभियुक्त मर चुका है ।"

ला०—"हाँ, रिपोर्ट तो ऐसी ही है; देखिए क्या होता है। हाँ एक बात और है ।"

सा०—"कहो क्या है ? इस बार तुम्हें समझ नहीं पाता हूँ ।"

ला०—"एक विज्ञप्ति ऐसी निकलनी चाहिए । जिसमें सभी पागलखानों और अस्पतालों को लिखा जाए कि इस-इस तरह के कोई व्यक्ति आपके यहाँ हों तो तुरन्त हमें सूचना दी जाए । यह विज्ञप्ति देश व्यापी होनी चाहिए। यही संवाद समाचारपत्रों में भी प्रकाशित किया जाएगा । आप डिस्ट्रिक्ट मैजिस्ट्रेट से लिखा-पढ़ी कर इसे शीघ्र ही निकाल दीजिए ।"

विस्मित मुद्रा से साहब ने कहा—"बहुत बड़ा रहस्य जान पड़ता है। कदाचित् उसके उद्घाटन में भी तुम सफल हो रहे हो ।"

लम्बी साँस ले लाल बोले—"अभी गहरी खाइयाँ पार करनी हैं, घोर अन्धकार भेदना है । कुछ यह हल-सा अवश्य दीखता है ।"

यहाँ से वे लाल कोठी गए। श्रीमती बोस से देर तक बातें करते रहे, उन्हें आश्वासन देते रहे । कहो, श्रीमती जी, जो होना था, वह तो हो ही गया, उसमें हमारा आपका किसी का कोई वश नहीं। आगे की चिन्ता आप कुछ भी न करें। बिटिया के ब्याह की बात रही, उसका ब्याह ईश्वर चाहेगा तो

हम लोग बहुत योग्य वर से करेंगे। आप चाहे हमें अपने निकट न समझें, परन्तु मानवता के नाते हम और आप बहुत ही निकट हैं। मैं विश्वास दिलाता हूँ आपको कि आप भी न रहें, तो भी बिटिया के ब्याह में कोई विघ्न नहीं उपस्थित होगा। इसकी चिन्ता आप न करें।"

कृतज्ञता के रस में डूबे हुए स्वर में श्रीमती बोस ने कहा—"लाल साहब क्या मैं देवता और मनुष्य का भेद नहीं जानती? आप तो देवता हैं। ऐसी सहृदयता मनुष्य में होनी चाहिए, परन्तु कहीं मैंने देखी नहीं, बिन्दो आपकी बेटी है, चाहे जो करें। भगवान आपको······।"

श्रीमती का गला भर आया। इतने में बिन्दो हाथ में एक किताब लिए आ गई। लाल साहम के पैर पकड़े। उन्होंने उसे गोदी में उठा लिया, पूछा—"बिन्दो, पढ़ने में तुम्हारा मन लगता है न?"

बिन्दो—"हाँ, चला जी।"

उसके सिर पर हाथ फेरते हुए लाल ने कहा—"वाह रे मेरी बिन्दो!"

एकाएक बिन्दो के नेत्र छलछला गए। लाल ने समझ लिया पिता की याद आ गई। माता के नेत्र भी भीग गए। लाल ने बिन्दो को हृदय से लिपटा लिया? रूमाल से उसके आँसू पोंछते हुए कहा—"तुम रोने क्यों लगीं बिन्दो! जहाँ तुम्हारे बाबू जी गए हैं, वहीं सब को जाना होता है—वह भगवान का घर है। वही हमको यहाँ भेजता है, वही बुला लेता है।"

डबडबाई हुई आँखें अपने चाचा की देख बिन्दो ने कहा—"वह सबको बुला लेता है ऐसे ही? अभी बाबूजी के जाने का समय कहाँ था?"

लाल—"नहीं था बिट्टी, यह तो मैं मानता हूँ लेकिन उसकी इच्छा और अपने कर्म।"

बिन्दो—"अपने कर्म! चाचा जी!"

लाल—"हाँ बेटी, अपने कर्मों से ही सुख-दुख मिलते हैं और वे ही अपने भाग्य बनते हैं।"

बिन्दो—"तो मेरे बाबूजी के कर्म तो अच्छे थे, फिर?"

लाल—"पूर्व जन्म के कर्म भी उनमें शामिल रहते हैं बिन्दो, जिन्हें हम जानते नहीं।"

बिन्दो—"यह अब कैसे जाना जाए ?"

लाल—"तुम बड़ी शीघ्र ही जान जाओगी । जिस तरह मन लगाकर पढ़ती हो, उसी तरह पढ़ती जाओगी तो बहुत ही शीघ्र जान जाओगी । तुम्हारी बुद्धि बड़ी अच्छी है । देखो बिन्दो……।

बिन्दो—"क्या चाचा जी ?"

लाल—"तुम्हारी परीक्षा लूँगा, अच्छे नम्बरों से पास हो जाओगी तो तुम्हें बड़ी सुन्दर-सुन्दर पुस्तकें, कलम और स्वेटर पुरस्कार मैं दूँगा—समझी !"

बिन्दो ने उत्फुल्ल हो कहा—"सच चाचा जी ?"

लाल बोले—"हाँ, हाँ, बिन्दो ! सच ।"

बिन्दो—"लेकिन चाचा जी, आज बिना खिलाए जाने न दूँगी ।"

लाल—"नहीं बिन्दो, मुझे देर होगी ।"

"नहीं चाचा जी, बिना खिलाए न जाने दूँगी", इतना कह बिन्दो उनके गले से लिपट गई । उसे चूमते हुए लाल ने कहा—"अच्छा खाकर ही जाऊँगा बिन्दो, जिससे तुम खुश रहो ।"

"चाचा जी आपको तो याद ही कर हम खुश हो जाते हैं । आप कई दिनों तक जब गायब हो जाते हैं तो तबियत घबरा जाती है । माँ मुझे पता लगाने को भेजती है । क्यों चाचा जी, हेम बहन को आज क्यों नहीं साथ लाए ?" बिन्दो बोली ।

दो घण्टे बाद लाल साहब डाक्टर सिनहा के घर गए । उनसे बहुत-सी बातें हुईं । उसी समय चौदह-पन्द्रह वर्ष का एक सुन्दर लड़का आया और डाक्टर साहब की कुर्सी पकड़ कर खड़ा हो गया ।

डाक्टर ने कहा—"क्या है बेटा ? अरे चाचा जी को प्रणाम नहीं किया ? चरण पकड़ो ।"

लड़के ने लाल के चरण छुए । उसे उठाते हुए उन्होंने कहा—"सुखी रहो बेटा ! अरे बिहारी ! तुम तो बड़े हो गए । मैंने तो पहचाना ही नहीं । फिर तुम मुझे कैसे पहचानते ? कहाँ रहे इधर तुम ?"

'ननिहाल चले गए थे, चाचा जी ।"

"किस क्लास में पढ़ते हो बेटा ?"

"दसवीं में चाचा जी।"

डाक्टर साहब की ओर देखते हुए लाल ने पूछा—"बिहारी के और भाई बहन ?"

डाक्टर साहब ने कहा—"आप का बिहारी अकेला है।"

लाल—"योग्य लड़का एक भी बहुत है।"

डाक्टर—"बिहारी खर्च बहुत करता है; लाल साहब।"

ला०—"लाडला बेटा है मेरा बिहारी।"

बिहारी ने लजीली आँखों से तनिक लाल की ओर देखा और फिर नीचे देखने लगा। वह स्नेह में सराबोर हो गया। पिता के अतिरिक्त ऐसी ममता ऐसा स्नेह उसने अन्यत्र कहीं न देखा था, न ऐसा रूप-सौष्ठव ही उसने कहीं देखा था। चाचा कह मानो वह आज धन्य हो गया।

लाल ने कहा—"बैठ जाओ बेटा यहाँ"

कुर्सी के हाथ पर बिहारी बैठ गया। लाल ने अपना हाथ उसके कन्धे पर रखते हुए कहा—"देखो बिहारी अपव्यय से बचे रहो। हाँ, खाने-पीने और पहनने में कसर न रखना। विपन्नों की सहायता करना। एक हाथ अपनी ओर एक दीन-दुखियों की ओर, इतना भूलना मत।"

बिहारी स्नेह में डूब गया। कहा—"अच्छा चाचा जी।"

बिहारी भीतर चला गया। शीघ्र ही चाय का ट्रे ले लौटा। लाल बोले—"चाय ले आए बिहारी।"

चाय के बाद जब बिहारी ने उनके सिगरेट भी जला दिए तो लाल ने कहा "अच्छा अब तुम जहाँ जाना चाहते हो जाओ।"

"पढ़ने जा रहा हूँ चाचा जी, परीक्षा निकट है। चार दिन की छुट्टी है।" बिहारी बोला।

लाल ने कहा—"अच्छा जाओ।"

बिहारी घर में चला गया, तो लाल ने डाक्टर से कहा—"बिहारी का विवाह तो नहीं हुआ होगा अभी।"

डाक्टर साहब बोले—"भगवान जिला देगा तो···।"

लाल—"कहीं बात-चीत है।"

डाक्टर—"अभी कहीं नहीं। ऐसी जल्दी क्या है? हाँ, इसकी माँ विवाह के पीछे पड़ गई है। स्त्रियों को तो आप जानते ही हैं। बिहारी का विवाह आप जहाँ कहेंगे वहीं करूँगा।"

लाल—"मेरी राय पर आप होते तो कभी कुछ चर्चा अवश्य की होती।"

डाक्टर—"अभी तो इसकी बात ही नहीं थी। क्या आप हँसी समझ रहे हैं? मैंने सच कहा है कि आप जहाँ चाहें, उसका ब्याह करदें। बेटा आप का है।"

बिहारी हाथ में किताब लिए फिर आ खड़ा हुआ। लाल ने पूछा—"क्या है बिहारी?"

"चाचा जी, इस पद्य का भावार्थ मेरी समझ में नहीं आता।" बिहारी ने कहा।

लाल हँस कर बोले—"अरे यह सब हम लोग क्या जानें बिहारी! ये ठहरे डाक्टर, मैं ठहरा इंस्पेक्टर। चीर-फाड़ और जाँच पड़ताल हो तो कुछ करूँ, अच्छा लाओ, देखूँ तो।"

खिलाड़ी

००००००

अभी-अभी स्नान के पश्चात् अलकें कंघी कर वैसे ही छोड़ दी गई थीं। नितंब-चुँबित काली घुंघराली रेशम-सी वे अलकें एक शुक्ल साड़ी के ऊपर से लटक रही थीं। साड़ी कुछ असावधानी से कँधे से लपेट पीछे की ओर लटका दी गई थी। शायद इसी से विचित्र सुन्दर लग रही थी। माथे पर केसर-बिन्दु था। ऊषा की मृदुल रश्मियाँ उस मूर्तिमयी के रूपोधान में वातायन से आ खेल रही थी अथवा उस सुषमामयी से ही उद्भूत हो अपना आलोक फैला रही थीं। ऊषा की कोई कल्पना हो सकती है, तो उसकी मूर्ति इससे सुन्दर, इससे सत्य नहीं हो सकती—यही मूर्ति जो आपके सामने है।

यही तो है—अलक-रजनी को पीछे समेटे मंजुल-शीतल आलोकमयी दिव्या-दिव-दुकूलिनी यह हेम ऊषा नहीं, तो और क्या ? प्रत्यक्ष ऊषा, ऊषा देवी है !

इतनी तन्मयता क्यों ? कोई चित्र रच रही है काश। कितनी नीरव, कितनी बिलीन, कितनी एकान्त, कितनी अनिमेष ! कहीं ये झुरझुराती हुई मृदुल हिलोरें वरुनियों को कुछ जोर से न हिला दें और पलकें बन्द कर देनी पड़ें।

नहीं-नहीं ऐसा नहीं हो सकता। अरे ये तो प्रिय सहेली के परिहास-सी धीरे-धीरे उन कमनीय अंगों को, परस-परस पुलकित हो रही है, और उन्हें पुलकित कर रही है।

लाल ने झरोखे से ऊषा देवी की झाँकी पायी। अतुल तन्मयता देखी। लाल की लालसा बोल उठी—"कितनी कलाएँ, कितने विकास हैं इस रूप में !"

वे एक दूसरे द्वार से हवा से भी हौले भीतर प्रविष्टि हो अनदेखे तरुणी के पीछे खड़े हो गए। तनिक बगल हो, सिर उठा देखा उस चित्र को जिसे वह अंकित कर रही थी।

वे क्या जानते थे कि हेम ऐसी चितेरी है ? चित्र पूरा होने के ही निकट

था। उन्होंने देखा कि वह चित्र उन्हीं का था। वे पुलकित हो गए, उल्लसित हो गए, उमंगित हो गए। देखा अपना जीवन, अपना प्रेम, अपनी कर्मनिष्ठा उस चतुर चकोरी-चितेरी के हाथों से चित्र-रेखाओं में ढुलक रही थी।

चाहा कि चितेरी को क्रीड़ा में लगा लें। परन्तु यह सोचकर कि यह बाधा उपस्थित करेगी, वे रुक गए। धीरे से मुड़े और कमरे से बाहर हो गए। तन्मयी ने उनका आना-जाना कुछ भी न जाना।

दूसरे कमरे में जा वे प्रेमलता से बातें करने लगे। प्रेम ने पूछा—"कब आए लाल साहब ?"

लाल—"अभी आया हूँ।"

प्रेम—"हेम कहाँ है ?"

ला०—"कुछ काम कर रही हैं।"

प्रेम—"मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि आजकल आप वैसे व्यस्त नहीं दीखते।"

ला०—"नहीं देवी जी, मेरी व्यस्तता तो कुछ वैसी ही है अभी; परन्तु एक खुशी की बात अवश्य है।"

इतने में हेम भी चली आई। वह ऐसी आलोकित थी, मानो कोई सफलता मिली हो। हाँ, सफलता क्यों न मिली थी ? उसने आज अपना चित्र पूरा कर लिया। उसका चित्र जिसे वह स्वयं नहीं जानती कि कितना चाहती है, जिसके स्मरण मात्र से उसकी जीवन-सत्ता उन्मुक्त लवा की भाँति अनन्त आकाश में उड़ जाया करती है, मलयानिल-सी मृदुल हिलोरें लेने लगती है, लहरों-सी लहराने लगती है, ग्रीष्म के शीतल सलिल स्रोत-सी सुप्रवाहित होने लगती है, नीरव, निर्मल गगन में तारों-सी झिलमिलाने लगती है।

लाल साहब की खुशी की बात सुनने को हेम की लालसा भला कब न ललक उठती ? नमस्कार कर पूछा—"कब आए हैं लाल साहब ?"

ला०—"अभी आया हूँ।"

हेम—"क्या शुभ संवाद लाए ?"

ला०—"श्रीमती बोस को बिन्दो के ब्याह की बड़ी चिन्ता थी। मैंने बिन्दो के लिए योग्य वर ढूँढ़ लिया।"

प्रेम और हेम दोनों प्रफुल्लित हो गईं। उत्सुकता से पूछा—"कौन लड़का

है ? बड़ा अच्छा हुआ।"

लाल बोले—"डाक्टर सिनहा का लड़का बिहारी है। जैसी सुन्दर, सुशील बिन्दो है, वैसा ही बिहारी भी।"

प्रेम ने पूछा—"बात-चीत तय हो गई।"

"नहीं, अभी कुछ भी नहीं। हाँ, इतना है कि मुझे अधिकार मिल गया है। इधर से है कि बेटी आपकी है, जहाँ चाहें व्याह दें; उधर से भी है कि "बेटा आपका है, जहाँ चाहें व्याह दें। अभी घर वाले एक दूसरे को तथा मेरे इस वरण को नहीं जानते।"

हेम की मुद्रा में एक लालसा, एक आशा, एक उमंग और एक प्रेमातुरता साथ-ही-साथ झलक आई। उसी समय संयम का भी एक आवरण आ गया। लाल और प्रेम ने उसे पृथक्-पृथक् देखा।

बातों का क्रम बदलते हुए लाल ने कहा—"श्रीमती जी, कभी कोई व्यक्ति जिसके देखने से दिवाकर जी का ध्यान आ जाता हो, अर्थात् उनके ही रूप-रंग का कभी यहाँ दिखाई पड़ा था ?"

प्रेम ने कुछ देर सोचकर कहा—"हाँ, एक खिलाड़ी एकाधबार आया था। उसने ताश और कितने तरह के बड़े विचित्र खेल दिखाए थे। उसे उन्होंने रुपए और कुछ अपने लिबास भी इनाम दिए थे। उसे कुछ दूर से देखने से दिवाकर जी का ही भ्रम होता था।"

लाल साहब की मुद्रा आलोकित हो गई। यद्यपि वह उलझन से मुक्त न थे। कुछ रुककर उन्होंने पूछा—"नाम-ग्राम कुछ मालूम है ?"

प्रेम—"कुछ नहीं। रहने वाला तो शायद वह बंगाल के कँवरू-कमच्छा का था।"

ला०—"बंगाली-सा जान पड़ता था।"

प्रेम—"हो सकता है कुछ-कुछ।"

ला०—"अवस्था क्या रही होगी ?"

प्रेम—"पैंतिस-सैंतिस की।"

ला०—"हेमलता नहीं थी उस समय ?"

प्रेम—"क्यों हेम, तुम तो नहीं थीं ?"

हेम—"नहीं बहन।"

प्रेम—"इससे कुछ विशेष बात निकलेगी क्या ?"

ला०—"बहुत कुछ निकल सकता है और कुछ भी नहीं।"

हेम कुछ मधुर व्यंग्य भरी मुस्कुराहट के साथ कह उठी—"बहुत कुछ और कुछ भी नहीं।"

प्रेम ने हेम की ओर, फिर लाल की ओर देख मुस्कान से कहा—"लाल साहब, हेम को कुछ अहंकार है कि मैं भी जासूसी की बातें कुछ जानती हूँ। क्या यह सचमुच आपसे बहुत कुछ सीख गई है ?"

हेम ने थोड़ा मुस्कुराकर कहा—"क्यों दीदी, क्या भगवान ने हमें मस्तिष्क नहीं दिया है, हम सोच विचार नहीं सकतीं ? क्या सब कुछ जासूसों के ही हिस्से पड़ा है ?"

प्रेम—"अच्छा तुम बता सकती हो कि इससे लाल साहब का क्या लक्ष्य है ?"

हेम—"बता दूंगी तो क्या पुरस्कार दोगी बहन ?"

प्रेम—"इतना बड़ा कि तुम शायद उठा भी न सकोगी।"

परिचय

०   ०   ०   ००

डाक्टर सिनहा के बँगले पर लाल साहब गए तो बिन्दो को भी साथ लेते गए। बगल में उसे भी बिठा लिया। डाक्टर साहब ने पूछा—"यह बिटिया ?"

ला०—"डाक्टर बोस की लड़की है। यही बेचारी रह गई है, और इसकी माँ। बड़ी सुशील है डाक्टर साहब, साक्षात् देवी।"

डाक्टर साहब ने बड़े ही स्नेह से कहा—"यहाँ आओ बेटी।"

लाल ने कहा—"जाओ बिन्दो।"

बिन्दो जाकर डाक्टर साहब के पास बैठ गई। सिर पर हाथ फेर उन्होंने प्यार से कहा—"तुम्हारा नाम बिन्दो है, बिटिया ?"

धीरे से बोल उठी बिन्दो—"हाँ पिता जी।"

फूल खिल उठे, ओस की बूँदें हिल उठीं। डाक्टर साहब ने ऐसी मीठी ममता से भरी बोली कभी न सुनी थी ?

पूछा—"पढ़ती हो बिटिया ?"

बिन्दो—"हाँ पिता जी।"

बिन्दो का एक-एक शब्द डाक्टर सिनहा के स्नेह को, वात्सल्य को अपने में समेट रहा था।

फिर पूछा—"किस क्लास में बिटिया ?"

बिन्दो—"सातवीं में पिता जी।"

बिन्दो की आँखें छलछला गईं। कब से वह उन पर नियंत्रण करती आ रही थी ?

डाक्टर ने कहा—"बिटिया रोती क्यों हो ?"

लाल ने उसे अंक में लिपटाते हुए कहा—"पिता की याद आ जाती है। प्यारी इकलौती संतान जो ठहरी।"

फिर कहा—"बिन्दो !"

बिन्दो सम्भल गई। डाक्टर ने कहा—"बिन्दो, रोओ नहीं। चलो तुम्हें अपना घर दिखा लावें। यहाँ भी तुम्हारी एक माँ है। चलो उनसे बात-चीत कर आओ।"

बिन्दो, जिसके नीरव नीहार-बिन्दु अभी अच्छी तरह सूखे भी न थे, लाल की ओर देखने लगी।

लाल ने कहा—"जाओ बिन्दो।"

बिन्दो खड़ी हो गई। डाक्टर ने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और भीतर चले। श्रीमती सिनहा कोई पुस्तक देख रही थीं। पुस्तक से आँखें उठा कर देखा डाक्टर के साथ बिन्दो को। पूछा—"यह बिटिया कौन है ?"

डाक्टर—"डाक्टर बोस को जानती हो ?"

श्रीमती—"लाल कोठी में जिनकी हत्या हुई ?"

डाक्टर—"हाँ, उन्हीं की लड़की है। बेचारी यह है और इसकी माँ। बिन्दो नाम है बिटिया का। देवी है, देखो।"

श्रीमती ने बिन्दो की ओर स्नेह दृष्टि से देखते हुए अपने समीप बिठा लिया और कहा—"बिटिया, बड़ा अच्छा किया जो यहाँ चली आईं। किसके साथ आईं ?"

"चाचा के साथ, माँ।" बिन्दो ने कहा।

माँ की ममता का रोम-रोम पुलकित हो गया। सचमुच देवी है यह तो, देवी-सा रूप और देवी-सा गुण।

"कौन चाचा ?"

"लाल साहब।" सिनहा ने कहा।

श्रीमती—"अच्छा बिन्दो, तुम्हें क्या खिलाऊँ ?"

बिन्दो—"कुछ नहीं माँ, मुझे भूख नहीं लगी है।"

श्रीमती—"ऐसा भी हो सकता है क्या। तुम्हें बिना खिलाए छोड़ूँगी बिटिया।"

चुनावदार धोती, हाफ कमीज और एक चप्पल पहने बिहारी भी कहीं से आ गया और कहा—"माँ, यह कौन है ?"

बिन्दो ने दोनों हाथ जोड़कर बिहारी को नमस्कार किया। माँ ने कहा—“यह लाल साहब के साथ आई है, डाक्टर बोस की बेटी है, बिन्दो नाम है।”

“कुछ खिलाया-पिलाया नहीं माँ।” बिहारी ने कहा।

बिन्दो ने बिहारी को देखा, बिहारी ने बिन्दो को।

“अरे चाचा से नहीं मिले बेटा।” श्रीमती ने कहा।

“जाता हूँ माँ जाता हूँ, तुम बिन्दो को कुछ खिलाओ।”

बिहारी ने वहाँ से आ लाल साहब के पैर पकड़े। पास बैठा कर उन्होंने कहा—“अच्छे हो बिहारी।”

“आपकी कृपा है चाचा जी।” बिहारी बोला।

थोड़ी देर में बिहारी भीतर गया और फिर लौटकर कहा—“चाचा जी, चलिए कुछ भोजन कर लीजिए।”

“तुम लोग तो मुझे खिला-खिलाकर परेशान कर देते हो। भूख न हो तो कैसे खाऊँ।” लाल ने कहा।

“थोड़ा ही-सा चाचा जी।”

एक ही टेबुल पर बैठ गए, लाल साहब, डाक्टर साहब, बिहारी और बिन्दो सब। लाल ने कहा—“मुझे तो भूख है नहीं। हाँ, भाभी परसेंगी, तो कुछ खा लूँगा।”

मुस्कराकर सिनहा ने कहा—“श्रीमती जी, अब तो आपको मैदान में आना पड़ा।”

श्रीमती किवाड़ की ओट से थाल के निकट आईं। सिनहा ने कहा—“लीजिए लाल साहब, अब पिछड़िएगा, तो ठीक नहीं।”

कतिपय ग्रासों के साथ कुछ मनोरंजन भी होता जाता था। लाल ने कहा—“बिहारी तुम बिन्दो को घर पर एक घण्टा पढ़ा दिया करोगे।”

बिहारी—“अच्छा चाचा जी।”

लाल—“क्या फीस लोगे?”

बिहारी ने कुछ हँसकर कहा—“आप भी चाचा जी कभी-कभी ऐसी बात कहते हैं...।”

लाल बोले, कुछ कृतिम गंभीरता से—“तुम हँसी समझ रहे हो बिहारी! देखो बेगार अच्छा नहीं होता।”

बिहारी—"वाह चाचा जी, आपकी इच्छा, और मेरा स्नेह क्या यह सब बेगार है? क्या रुपयों में इनसे अधिक आकर्षण है, अधिक प्रेरणा है।"

दो पूड़ियाँ हाथ में ले श्रीमती लाल के पास खड़ी थीं। लाल ने कहा—"बस अब कुछ नहीं भाभी।"

दो मेरी ओर से, कहते हुए श्रीमती ने पूड़ियाँ उनके थाल में छोड़ दीं।"

चलने लगे तो लाल साहब ने पूछा—"बिन्दो चलोगी।"

"नहीं बिन्दो को अभी रहने दीजिए। बिटिया अभी रहकर जायेगी।"

बिन्दो लाल साहब को देखने लगी। वे बोले—"रह जाओ बिन्दो। कोई तुम्हें पहुँचा देगा नहीं तो फिर मैं आ जाऊँगा।"

बिहारी की ओर देखकर कहा—"तुम बिन्दो के साथ चले जाना। कोठी देखी है न।"

"हाँ चाचा जी, देखी है। मैं छोड़ आऊँगा।"

प्रेम के चित्र, प्रेम की माला

अपना चित्र पूरा कर उसी टेबुल पर हेम ने छिपा कर रख दिया। उसे वह व्यक्त रूप से प्रयुक्त करेगी, अथवा छिपा कर ही रक्खेगी, इसे तो हेम ही जाने।

परन्तु आज जब वह टेबुल पर ढूंढ़ने लगी तो वह चित्र न मिला। पहले तो घबराई। पर फिर न जाने क्या सोच व्यग्र हो गई।

प्रेमलता के पास जा कर बोली—"बहन, मेरे उस टेबुल पर से तुमने कुछ लिया है?"

प्रेम—"क्या।"

हेम—"कुछ भी।"

प्रेम—"नाम भी तो बताओ। कुछ-कुछ क्या कहती हो?"

हेम—"अच्छा जाने दो, कुछ नहीं।"

प्रेम ने तनिक मुस्कुराकर कहा—"तुम्हारी बातें मेरी समझ में नहीं आतीं।"

"जरा मैं लाल साहब के बँगले पर जा रही हूँ।" हेम बोली।

प्रेम ने कहा—"तुम व्यग्र भी हो, प्रसन्न भी हो। कहना भी चाहती हो और नहीं भी कहना चाहती हो। कुछ समझ में नहीं आता। जाना चाहती हो तो जाओ।"

लाल साहब के बँगले में जाकर वह घूम-घूमकर सभी कमरे देखने लगी। उसे अभी न लाल ने ही देखा, न उनकी माँ ने ही। शयनागार में गई तो देखा कि उसका चित्र एक शीशे में मढ़ा एक स्टूल पर उनके सोफे के समीप रक्खा है। चाहा चित्र को अपने पास छिपा ले। तब तक लाल साहब आ गए और पीछे से उसकी आखें मूंद लीं, वे आंखें जो अपने प्रेम को अपनी चित्रकारीमें

देख रही थीं।

"जासूस के घर में चोरी।"

"चोर के घर में चोरी का माल बरामद।"

लाल हेम को माँ के पास बिठा कहीं चले गए। एक घण्टे बाद आए तो फिर हेम को ले पीली कोठी गए।

प्रेमलता ने कहा—"लाल साहब, आज हेम ने मुझसे पूछा कि मेरे टेबुल पर से तुमने कुछ लिया।" मैंने पूछा—"क्या ?" तो बोली—"कुछ, फिर कुछ नहीं।"

लाल ने मुस्कुराकर कहा—"इनकी बातें कभी-कभी समझ में नहीं आतीं। चलिए देवी जी, देखा तो जाय इनके टेबुल पर क्या-क्या रहता है, और क्या गायब हुआ है। आप बतातीं क्यों नहीं हेम देवी।"

तीनों हेम के टेबुल के समीप गए। प्रेम उस पर की सभी वस्तुएँ उलटने-पलटने लगी। देखा तो कागजों के नीचे हेम का एक सुन्दर चित्र पड़ा था।

हेम विस्मित हो कह उठी—"अरे यह क्या ?"

ला०—"क्या यही चित्र खोया था आपका ?"

हेम—"जी नहीं, यह तो···।"

प्रेम—"तब क्या खोया था। चित्रकार बहुधा अपना नहीं, दूसरों का ही चित्र अंकित करते है। तुम तो अपना ही चित्र बनाकर तुष्ट हो। मेरी आत्म-तुष्ट हेम को देखिए लाल साहब।"

प्रेम ने फिर कहा—"अब तो बताओ क्या खोया है, तुम्हारा ?"

हेम ने उनकी ओर देखा। विस्मय का आवरण एक सलज्ज समोद मुस्कुराहट में बदल गया।

लाल ने हेम वाला अपना चित्र सामने करते हुए कहा—"देखिए यह तो नहीं है आपका चित्र ?"

हेम कुछ लजा गई। प्रेम ने कहा—"यह तो आपका चित्र है ?"

लाल—"लेकिन चित्र इनका है।"

प्रेम—"हेम ! तुम ऐसी चितेरी हो।"

हेम—"बहन यह चोरी का अभियोग है। तुम फैसला करो।"

प्रेम—"चोरी तो पहले तुमने ही की। लाल साहब आप भी बड़े अच्छे

चितेरे हैं। अच्छा तुम अपना चित्र ले लो और लाल साहब अपना बस न।"

अकेले मे लाल ने कहा—"मेरी हेम को चुरा लिया तुमने।"

"और मेरे लाल को··· ।"

× × ×

बिन्दो को पढ़ाते हुए बिहारी को एक सप्ताह हो गया। आज जब वह पढ़ाने आया, तो उस समय रात के आठ बजे थे, पहले उनमें कुछ बातें हुईं। हेम और लाल बाहर खड़े हो उनकी बातें सुन रहे थे।

बिहारी ने कहा—"बिन्दो, तुम्हारे लिए मैं एक माला बनाकर लाया हूँ।"

बिन्दो—"माला! आप माला बनाते है बिहारी बाबू ?"

बिहारी—"बनाता तो नहीं, पर तुम्हारे लिए बना लाया।"

बिन्दो—"तो मेरे लिए क्यों बना लाये ?"

बिहारी—"तब किसके लिए बनाता ?"

बिन्दो—"क्या माला बनाना आवश्यक है ?"

बिहारी—"क्या तुम्हे फूलों से प्रेम नही है ? क्या तुम्हें शृंगार और सौंदर्य से प्रेम नही है ?"

बिन्दो—"यह किसे न होगा बिहारी बाबू! कहाँ है वह माला ?"

पाकेट से डिब्बा निकाला, डिब्बे से माला। कहा—"यह रही, तुम्हें पसन्द है बिन्दो ?"

बिन्दो—"बड़ी अच्छी माला है। आप बड़ी अच्छी माला बनाते है। इसे देवी जी को पहना दीजिए बिहारी बाबू।"

माला बिन्दो के गले मे डालते हुए पुलकित बिहारी ने कहा—"लो देवी को पिन्हा दी।"

लज्जित, सस्मित, पुलकित हो बिन्दो ने कहा—"अरे यह आपने क्या किया ?"

"किया क्या, अपनी इष्ट देवी को पिन्हा दी। कैसी अच्छी लगती हो तुम बिन्दो!" बिहारी बोला।

बिन्दो ने कहा—"आपके गले मे होती तो यह और अच्छी लगती।"

"मेरे गले में तो यह प्रसाद-माला बन कर आएगी न।" बिहारी ने कहा।

"ओह आप तो··· ।"

फिर पढ़ाना शुरू किया। मास्टरों को बड़ी जल्दी क्रोध आ जाता है। कुशाग्रबुद्धि बिन्दो को समझने में कुछ देर हुई और बिहारी का चेहरा तमतमाने लगा। जहाँ अभी इतना प्रेम था, वहाँ जब मास्टर साहब ऐसी प्रवण बिन्दो पर ऐसे क्रोधित हो गए, तो अन्यत्र, अन्य मास्टर तो न जाने कितना क्रोध करते होंगे।

मास्टर साहब ने कहा—"बिन्दो तुम्हारा मन पढ़ने में नहीं लगता, समझीं।"

बिन्दो बोली—"नहीं।"

डाट कर कुछ रूखे स्वर में कहा—"बड़ी बेसमझ हो। अब मैं चपत लगाऊँगा। लेकिन नहीं, मैं मारूँ क्यों किसी को! अब तुम्हें पढ़ाने ही न आऊँगा।"

"बड़ी बेसमझ हो, अब मैं चपत लगाऊँगा," इसका कोई प्रभाव न हुआ। लेकिन जब कहा—"मैं मारूँ क्यों किसी को अब तुम्हें पढ़ाने ही न आऊँगा", इन शब्दों ने उसे मर्माहत कर दिया। उसकी आँखें छलछला गईं। रोकते-रोकते भी कुछ बूँदें टप-टप पुस्तक पर टपक पड़ीं।

बिहारी भी मर्माहत हो गया। उसने नहीं सोचा था कि उसके शब्द इतने कड़े होंगे। बिन्दो के आँसुओं ने बिहारी के हृदय पर कड़ा आघात पहुँचाया। वह अपने आँसू पोंछता हुआ बोला—"बिन्दो, रोओ नहीं, अब मैं ऐसा कभी न कहूँगा।"

रूमाल से बिन्दो के आँसु पोंछते हुए बिहारी सीमित रहा। बिन्दो को फिर आघात पहुँचा। गीले स्वर में बोली—"बिहारी बाबू, आप मुझे पढ़ाते हैं, सब कुछ कह सकते हैं। आप क्यों रोने लगे? आपने दूसरी बात जो कही, तो क्या मैं··· ?"

बिहारी ने कहा—"बिन्दो।"

"बिहारी बाबू।"

लाल ने हेम की ओर देखा, हेम ने लाल की ओर। उनकी आकृतियों पर स्नेह, हर्ष और मन्द मुसकान छलक, झलक और ललक पड़ी।

वे भीतर प्रविष्ट हुए। "चाचा जी आए, चाची जी आईं।"

हेम और लाल की सस्मित आँखें मिलकर, मानो कह रही हों, "सुनो इनकी।"

खिलाड़ी का पता

उस खिलाड़ी का पता लगाने के लिए बंगाल के कई शहरों की खाक छाननी पड़ी लाल को। बेपता का पता लगाना बेप्रश्न का प्रश्न पूछना, "किसी खिलाड़ी को आप जानते हैं ?" "कैसा ?" "ऐसा।" "क्या रूप-रंग है ?" "ऐसा है।" ऊटपटाँग प्रश्न सब-के-सब। लेकिन करते तो क्या करते ?

कँवरू-कमच्छा में कई मुहल्ले छाने। एक जगह कुछ सिगरेट, बीड़ी, सलाई बेचने वाले एक बुड्ढे ने उनके प्रश्न को सुनकर कहा—"बाबू जी, पहले आप यहाँ बैठ जाइए।"

लाल को कुछ आशा-सी झलक गई। वहीं दूकान में बैठ गए। बुड्ढे ने कहा—"आप बड़े आदमी है, मैं आपका क्या सत्कार करूँ ?"

लाल—"इस मधुर स्नेह, इस मधुर भाषण से भी मधुर सत्कार कुछ और होगा।"

वृद्ध पुलक उठा। बोला—"अब जैसे लोगों में इतनी नम्रता, इतनी सज्जनता भला और कहाँ हो सकती है ?"

फिर उसी ने सिगरेट-केस और सलाई बढ़ाते हुए कहा—"शौक तो करते होंगे बाबू जी। लेकिन कुछ जल-पान कर लें, तो फिर।"

लाल ने कहा—"मैं तुष्ट हूँ दादा। सिगरेट पी लूंगा।"

वृद्ध—"आप बहुत व्यग्र हैं, जैसे कुछ खो गया हो।"

लाल ने कश लगाते हुए कहा—"हाँ, अवश्य खो गया है।"

वृ०—'तो आप किसे ढूंढ़ते हैं ?'

ला०—"एक खिलाड़ी था जो ताश-वाश के बड़े विचित्र खेल दिखाया करता था।"

वृ०—"कुछ नाम-ग्राम मालूम है ?"

ला०—"कुछ नहीं, इतना ही पता है कि यहीं कहीं कँवरू-कमच्छा का रहने वाला था वह।"

वृ०—"हूँ! क्या रूप-रंग है।"

ला०—"गोरा-गोरा, छरहरा। कुछ हमारा ध्यान आ सकता है उसे देखने से।"

वृद्ध मौन हो सोचता रहा। कुछ देर बाद बोला—"क्या मैं पूछ सकता हूँ आप कौन है और उसे क्यों ढूंढ़ रहे है?"

लाल ने कहा—"मुझे बताने में कोई हानि नहीं, लाभ ही हो सकता है और तुम्हारे जैसे व्यक्ति से। मैं जासूस हूँ एक हत्या हो गई है, उसी का सुराग लगा रहा हूँ।"

वृ०—"तो उस खिलाड़ी पर हत्या का सन्देह है?"

"उस पर हत्या करने का सन्देह तनिक भी नहीं है, और ही बात कुछ सामने आएगी।"

वृ०—"मुझे आपकी बातों का पूरा विश्वास है। जैसा आप कहते है, ऊँचे तल्ला में ऐसा एक खिलाड़ी रहता था। अब कहाँ है, है या नही, यह मैं नहीं बता सकता। दूकान उठाकर आपके साथ चलकर पता लगा सकता हूँ। नाम उसका मुझे याद आ नही रहा है।"

कुछ देर सोचकर बुड्ढा बोल उठा—"हाँ रतमल है, रतमल।"

लाल ने कहा—"मैं अवश्य तुम्हें कष्ट दूँगा दादा। इसके लिए मैं बहुत आभारी हूँ।"

"कष्ट की इसमें क्या बात है? मैं खुशी-खुशी चलूँगा—" बुड्ढा बोला।

आठ बजे रात को बुड्ढा लाल साहब के साथ ऊँचे तल्ला पहुँचा। एक पान की दूकान पर बैठ गए। बात-चीत शुरू हुई। पानवाला पान देने लगा। लाल ने कहा—"लगाकर रख दो, लेता जाऊँगा, अभी न खाऊँगा। दादा, तुम खाओ।"

वृ०—"मैं क्या खाऊँ, दाँत भी तो अब नहीं रहे।"

ला०—"अच्छे पान के मुलायम बीड़े एकाध डाल लो मुँह में।"

दूकानदार—"ये बड़े मुलायम बीड़े हैं, दादा के खाने लायक।"

"रलमल खिलाड़ी यहीं रहते हैं ?" कुछ देर में बुड्ढे ने पूछा।

लाल के क्षण द्विधापूर्ण हो गए। कहीं उसके मुँह से यह न निकल जाय—"यहाँ कोई रलमल नहीं रहते।" पर पान वाले ने कहा—"हाँ, रलमल खिलाड़ी उसी मकान में रहते थे। लेकिन उनकी कहानी बड़ी करुण है, और शायद अब उनकी कहानी ही मात्र रह गई हो।

बृ०—"क्यों, क्या हुआ ?"

पान०—"थोड़े ही दिन हुए रलमल का सारा परिवार प्लेग में स्वाहा हो गया। शोक से बेचारे रलमल पागल हो गए। न जाने कहाँ निकल गए ? लोगों का अनुमान है मर गए होंगे। क्योंकि जब से गायब हुए, फिर न कभी उनकी छाया दीख पड़ी, न उनके विषय में कुछ सुना ही गया। भगवान की लीला बड़ी विचित्र है। ऐसा खिलाड़ी हमारे यहाँ कोई नहीं है।"

ला०—"कितने दिन हुए उन्हें गायब हुए।"

पान०—"तीन-चार महीने से ऊपर हो गये होंगे।"

ला०—"रलमल नाम का कोई और खिलाड़ी यहाँ नहीं है।"

पान०—"खिलाड़ी इस नाम का कोई नहीं है।"

ला०—"उसका रँग रूप कैसा था।"

पान०—"गोरा-गोरा कुछ लम्बा-सा शरीर।"

बृ०—"इन बाबू जैसा।"

पान०—"इन बाबू जैसा। छिः बाबू जैसा आदमी तो मैंने कहीं देखा नहीं। क्या दादा, तुमने किसी को देखा है।"

बृ०—"नहीं। मेरे कहने का आशय इतना है कि क्या उसे देखने से बाबू जी का ध्यान आ सकता है।"

पान०—"बाबू जी का भ्रम हो सकता है, कुछ दूर से देखने से, बस। लेकिन आप तो कोई राजा हैं, ऐसे साधारण वेश में क्यों घूम रहे हैं। राजपूत होंगे आप।"

लाल ने कहा—"भाई मैं राजा-वाजा नहीं हूँ। प्राणिमात्र का सेवक हूँ। तुम अपना नाम तो बता दो।"

पान०—"मेरा नाम क्यों पूछते हैं बाबू जी ? क्या······?"

ला०—"कोई डरने की बात नहीं। यहाँ दो एक के नाम और बता दो जो यही बात कह सकें, जो तुम कहते हो।"

वृ०—"डरो मत भैया। ये भला किसी को धोका दे सकते हैं ? सच्ची बात कहने में भय ही क्या ?"

पान वाले ने अपना और दो एक के नाम और बता दिए। लाल ने नोट कर लिये।

वहाँ से दो एक जगह और गए। रलमल के विषय में वही बात सर्वत्र कही गई। वहाँ से रात को ही वृद्ध के घर लौट आए।

× × ×

कँवरू-कमच्छा से लौटकर जब लाल साहब पीली कोठी गए, तो पहले हेम से ही भेंट हुई। हेम ने उन्हें देख दूसरी ओर मुँह फेर लिया, मानो देखा ही नहीं। लाल साहब उसी की ओर देखते हुए कुछ मुस्कराते-से खड़े रहे। विनोद भरी सुस्मित की लाली उसकी आकृति पर भोले शिशु-सी खेल रही थी। ऐसा लगता, मानो अब वह सामने देखे और कुछ बोले बिना रह नहीं सकती, बोलने वाली ही है।

परिहास की यह स्थिति लाल ने भी कुछ देर तक रहने दी। कुछ देर बाद मुसकान में रंगे हुए शब्दों कहा—"मैंने कहा नमस्कार! आज देवी जी रूठी क्यों हैं ?"

तत्क्षण अपना हाथ हेम के वक्ष की ओर बढ़ाते हुए कहा—"यह माला ठीक से नहीं लटक रही है।"

हेम की बटोरी हुई हँसी बिखर गई। सामने देखती हुई और उनके बढ़े हुए हाथ को पकड़कर बोली—"आप! कब आए ?"

"जब आया, तब आया। आप रहीं कैसे ?" लाल ने कहा।

"जैसे आप रहे।" हेम बोली।

"देवी जी और सब लोग कैसे हैं ?" लाल ने पूछा।

हेम—"आप की कृपा से कुँवर साहब, सब लोग सकुशल हैं।"

ला०—"अच्छा अब तो मैं जाना चाहता हूँ।"

उनका हाथ पकड़कर हेम ने कहा—"तनिक भीतर पधारने की कृपा तो

कीजिए राजा साहब ।"

हेम उन्हें कमरे में ले गई। दोनों सोफे पर बैठ गए। हेम ने पूछा—"चाय लाऊँ।"

ला०—"पीने को तो जी चाहता है, लेकिन आज कोई अच्छा सर्वत पिऊँगा। मुझे बड़ी गर्मी मालूम होती है।"

हेम—"कौन-सा सर्बत लाऊँ। अनार, अंगूर, नींबू, सेब, कौन-सा ?"

ला०—"इन सबका सार।"

हेम०—"सबको मिलाकर लाऊँ ?"

ला०—"उस सार का भी सार।"

हेम—"सच बोलो क्या लाऊँ ?"

ला०—"सच कहता हूँ।"

हेम—"तो क्या लाऊँ ?"

ला०—"लाना-वाना कुछ नहीं है। सब तो मौजूद है, सुनो।"

हेम लाल की ओर झुक आई। लाल ने उसे बाहुओं में ले अपने अधरों और कपोलों को बंदनी के अधरों और कपोलों पर रख दिया, रगड़ दिया, सहला दिया। फिर चूम लिया, चूस लिया।

"छोड़ोगे नहीं ?"

"नहीं।"

कुछ देर बाद लाल ने अपनी आँखें हेम की आँखों में डाल कर कहा—"हेम!"

वैसे ही वह बोल उठी—"मेरे लाल!"

एकाएक प्रेमलता द्वार पर आ गई। परन्तु हेम और लाल की ओर दृष्टि जाते ही वह तुरन्त मुड़कर दूसरी ओर चली गई। हेम और लाल दोनों सकपका गए।

"बहन ने देख लिया ओह!" लजीली-सजीली आँखों से हेम ने कहा।

ला०—"मैं तो आज देवी जी से बिना मिले ही चला जाऊँगा।"

हेम—"तब तो और बुरा है, तुम तो अंधे हो जाते हो।"

ला०—"क्यों अंधा बना देती हो तुम ? खैर देख ही लिया तो क्या ?

देखता तो भगवान भी है। चलो अपराध स्वीकार करलें, तो दण्ड कुछ हलका मिलेगा। लेकिन इसके पहले इन स्निग्ध स्कन्धों पर इन कपोलों की छाया में, इस रसीली चितवन की मधु-माया में क्षण भर विश्राम ले लेने दो विश्राम-दायिनी।"

लाल ने अपने अधरों से कामिनी के कपोल का चुंबन लेते हुए अपना कपोल उसके स्कंध पर रख दिया। हेम ने अपना दाहिना हाथ लाल के स्कंध पर रखते हुए कहा—"सो लो मेरे लाल, सो लो। मेरी आँखों में सो लो, मेरे हृदय में सो लो, मेरी आशाओं में सो लो, मेरी अभिलाषाओं में सो लो, सो लो।"

"सो रहा हूँ उसमें ही मेरी रानी, जहाँ न राग है, न द्वेष, न श्रम है, न सन्देह, न अपूर्ति है, न अभाव है, केवल प्रेम, अनन्त प्रेम, आत्मतुष्ट प्रेम।" लाल बोले।

मृत्यु के घाट पर

ठीक नहीं कहा जा सकता कि लाल साहब कहाँ से आ रहे थे। अचानक वे जंगल में सशस्त्र डाकुओं से घिर गए। एकाएक दस-बारह व्यक्ति उन पर आक्रमण कर बैठे। इस समय पिस्तौल उनकी खाली थी। उन्होंने तलवार निकाल ली। लाल बीते दिनों के ही राजपूतों जैसी तलवार भी चला सकते थे। जब कभी, ऐसे अवसरों पर, वह रक्तमयी वीर-वीरेन्द्र के हाथों में खेलने लगती, तो उसे मेवाड़, चित्तौर-उदयपुर के अपने जौहर के, हल्दीघाटी के बीते दिन याद आ जाते—वह रण-रंगिनी हो जाती।

देर तक तलवार चलती रही। दो हाथों को बीसों हाथों का सामना करना था। तलवार की लड़ाई पुरानी हो गई हो, परन्तु ऐसी रण लिप्सा, वीरता का ऐसा प्रदर्शन पिस्तौल के फायरों में नहीं देखा जाता। वीरेन्द्र ने कितनों का सिर फाड़ दिया और घायल तो सबको ही कर दिया। परन्तु वे स्वयं भी घायल हुए जा रहे थे।

और भी बड़ा संकट आया, डाकुओं का एक और दल आ गया। परन्तु न जाने कहाँ से हेम भी आ गई। पिस्तौल से फायर करते हुए उसने जोर से ललकारा—"हम लोग भी आ गए।" आक्रमणकारियो के निकट आते-आते अपनी कटार भी निकाल ली। दो चार हाथ चलाए, फिर फायर किया। डाकू भागे, परन्तु आहतों को लेकर, और भागते-भागते एक बार हेम पर भी कर दिया, उसकी भुजा में चोट आई।

उस वीरांगना ने झट अपना रूमाल अपनी चोट पर बाँध कर वीरेन्द्र को उठा, कार पर रखकर गाड़ी डबल स्पीड से छोड़ दी। वह बात-की-बात में पीली कोठी चली आई।

कार पोर्टिको में खड़ी कर हेम ने प्रेमलता को पुकारा। उसकी आवाज

सुनते ही वे सन्न-सी हो गईं। नीचे आकर देखा तो घबरा गईं।

हेम ने कहा—"डाक्टर सिनहा को तुरन्त खबर देनी चाहिए।"

नौकर-चाकर हक्के-बक्के से खड़े रहे। हेम स्वयं उन्हें उठा कर अपने कमरे में ले गई और झट घावों को धोकर उन पर दवा लगाई। अपनी साड़ी को फाड़ कर ही पट्टी बाँधने लगी।

प्रेमलता ने बिहारी को बुलवाया। बिहारी, बिन्दो और उसकी माँ सभी चले आए। बिहारी के साथ वे स्वयं कार पर बैठकर डाक्टर साहब के यहाँ रवाना हो गईं।

डाक्टर साहब तुरन्त आए। आतुरता से ऊपर गए। देखा, बुरा हाल था। वीरेन्द्र अचेत पड़े थे। घावों से अभी रक्त बह ही रहा था। हेम उनके शीश पर हाथ रक्खे, आँखों में आँसू भरे, परन्तु असीम धैर्य के साथ बैठी थी। उसके घाव से भी रक्त श्राव हो रहा था। परन्तु उसे मानो चोट लगी ही न हो। बिन्दो रो रही थी और बिन्दो की माँ भी। बिहारी सिसक रहा था। प्रेमलता के सामने मानो वही कुँवर अजीत सिंह की ही घटना घटित हो गई हो।

डाक्टर साहब ने सबको आश्वासन दिया और घावों को फिर से धोकर दवा लगाई और उन्हें सीलकर पट्टियाँ बाँधीं। रक्त देखने-देखते बन्द हो गया। परन्तु लाल में चेतना के कोई लक्षण न दीखे। हेम के घाव पर भी पट्टी बाँधी गई।

कातर, किन्तु क्षत्राणी के कातर कंठ से प्रेमलता ने पूछा—"डाक्टर साहब साब··· ··· ···।"

डाक्टर ने कहा—"श्रीमती जी घबराने की कोई बात नहीं, अच्छे हो जावेंगे।

दाँत उभार कर एक दवा पिलाकर कहा—"पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। घावों के बन्धन न खुलने चाहिएँ। जागने पर मुझे तुरन्त खबर दी जाय। यहाँ तो मैं रहूँगा ही।"

बहुत से लोग लाल साहब को देखने आ रहे थे। मिस मोरियो, मिस्टर गुप्ता सभी लोग आए। बहुत देर तक ये लोग रहे। पूर्ण संवेदना प्रकट की, सान्त्वना दी।

साहब को पता चला। वे आधी रात को पहुँचे, नौकर ऊपर ले गया। साहब सन्न हो गए। समीप बैठकर धीरे से मस्तक पर हाथ रक्खा। ज्वर हो आया था। डाक्टर साहब भी आ गए।

साहब ने कहा—"टेम्परेचर हो आया है, डाक्टर साहब ?"

"जी हाँ एक सौ दो डिग्री पर है। शायद अभी और अधिक हो।" साहब ने डाक्टर की ओर देखा। डाक्टर ने कहा—"दी केस इज नाट होपलेस। (निराशा जनक अवस्था नहीं है।)"

धीरे से साहब ने पुकारा—"लाल !" क्षीण निस्पंदन हुआ। पर न आँखें खुलीं, न कुछ बोले। डाक्टर साहब ने कहा—"विश्राम ही अच्छा है।"

साहब की आँखें भर आईं। वे बोले—"डाक्टर साहब, इफ आई लूज माई लाल, आई लूज माई लाल एण्ड माई सेल्फ। नाट ओनली आई इविन दिस कन्ट्री लूजेज ऐन वंडरफुल ट्रेजर हूज लाईट कैन शाइन दी होल वर्ल्ड।" (मैं अपने लाल को खोता हूँ, तो अपना सर्वस्व और अपने को खो देता हूँ। मैं ही नहीं, यह देश भी एक अप्रतिम रत्न खो देता है, जो अपने प्रकाश से अखिल विश्व को प्रकाशित कर सकता है।)

डाक्टर ने कहा—"बट इट शुड नाट बी" (लेकिन ऐसा होना न चाहिए)।

साहब का, एक बड़े अफसर का ऐसा स्नेह देख लोग अतीव विस्मित और द्रवित हो गए। साहब ने देखा कि हेम को भी चोट आई है। उन्होंने आश्वासन भरे शब्दों में कहा—"देवी जी आप को भी चोट आई है ?"

हेम ने कहा—"मेरी चोट कुछ नहीं है।"

साहब ने देखा कि देवी की मुद्रा में करुणा से आवृत, असीम निष्ठा से परिपूरित, अपार वेदना से वितप्त अगाध प्रेम नीरव, निस्तब्ध रूप में स्थिर है। वे सिहर उठे।

साहब, हेम और लाल का प्रणय जानते थे। आश्वासन भरे शब्दों में कहा—"देवी जी, मेरी अन्तरात्मा कहती है कि लाल शीघ्र अच्छा हो जायगा। आप अधीर न हों, मेरी बातों का विश्वास कीजिगा।"

हेम ने उपकृत और विस्मित शब्दों में कहा—"आपकी शुभ कामना और

भगवान की कृपा से कुछ भी असम्भव नही है।"

× × ×

आधी, अँधेरी रात थी। प्रकृति निस्तब्ध थी। लाल के समीप बैठी, उनका एक हाथ अपने हाथ में लिए हेम स्थिर प्रेम कातर-दृष्टि से लाल का मुख देख रही थी। दस-दस मिनट पर उनका टैम्परेचर लेती जाती थी।

हेम मेरी तलवार, सहसा ये शब्द वीरेन्द्र के मुख से निकल पड़े, और साथ ही वे उठ बैठे। घाव के कितने बन्धन टूट गए और उनसे रक्त-श्राव होने लगा। हेम ने धीरे से उन्हें सुला दिया।

ऐसी अवस्था में डाक्टर साहब ने बता दिया था, चाहे घावों पर इस तरह यह दवा लगा देना, चाहे मुझे बुला लेना।

डाक्टर साहब यहाँ बराबर रहा करते थे, पर आज किसी बड़े सीरियस केस में चले गए थे। लेकिन यहाँ से पूछकर गए थे। हेम ने वैसा ही किया और देखा कि वह अपने प्रयास में सफल हो गई है।

वीरेन्द्र पूर्ववत् पड़े रहे। कुछ देर बाद उनकी आँखें खुल गईं। देखा हेम करुणा की लहर-सी, वेदना की छाया-सी, विशाप के विलाप-सी प्रतीक्षा और आशा की प्रतिमा-सी निर्निमेष उनकी ओर देख रही है। हेम को कुछ झुकने का संकेत किया। वह तुरन्त झुक गई। सोचा कहीं वे हाथ न उठा दें, कहीं बन्धन फिर टूट न जायें।

ज्यों-के-त्यों पड़े रहो, हाथ भी न हिलाओ। मैं झुक जाती हूँ, यों कहती हुई हेम झुक गई और अपने अधरों को उनके अधरों पर रख दिया। दो बूँद आँसू हेम की आँखों से लाल के कपोलों पर ढुलक पड़े।

हेम उठी। लाल के मुख से निकला—"मेरी हेम।" और आँखें बन्द हो गई। उनमें जो आँसू अन्तराल से आ गए थे, उनकी काली बरुनियों को डुबा दिया। हेम ने उन्हें अपनी हाथों से पोंछ दिया। उसके हृदय से एक आह निकल पड़ी। वह सिर से पैर तक सिहर गई, फिर स्थगित हो गई। आह की आह में आह आई—"भगवान मेरे लाल को⋯ ⋯" हृदय का कंपन फिर कंठ को न लाँघ सका। परन्तु यदि कोई महा नियामक हमें अनदेखे देखता है, अन-

सुने सुनता है, अनुभूति अनुभव करता है, तो उसने सब कुछ देख, सुन और जान लिया।

आधी रात की निबिड़ निस्तब्धता-सी, निराशा की मूक हाहाकार-सी, सुख के अन्तिम क्षण-सी, वेदना के, निर्निस्पंद कम्पन-सी हेम, जिस प्रेममयी सुन्दरी का सुहाग-सिन्दूर भावी के ललित अंचल में ही धुलने जा रहा था, अपने लाल से, अपने वीरेन्द्र से--मृत्यु की छाया से लिपट गई। यदि मृत्यु में जीवन, निराशा में आशा, अंधकार में प्रकाश होता हो, तो वहीं हेम में भी था।

प्रेमलता की झपकी टूटी। तुरन्त उस कमरे में आई और देखा कि हेम की हेमता का तीव्र ह्रास हो रहा था। वीरेन्द्र को देख उसे क्रोड़ में ले बोली—"हेम ! हेम !"

आँसुओं-सी प्लावित, वेदना-सी विदीर्ण हेम क्षीण स्वर में बोल उठी—"मुझे भी लुटते देख लो बहन ! तुम्हारे आँसू······"

हेम अवाक् हो गई। प्रेम ने उसे लिपटा कर निरुद्ध कराह से कहा—"हेम ! हेम ! मैं अब······।"

कार की आवाज़ सुन पड़ी। डाक्टर साहब आ गए। घबराये हुए थे। ऊपर गए तो मानो उनके शरीर में निस्पंदन ही न रहा हो। टैम्प्रेचर लिया, हृदय की धड़कन देखी। देर तक लाल की आकृति देखते रहे। फिर समीप ही बैठ गए। चार आँखें उनकी ओर देख रही थीं, पूछ रही थीं—"डाक्टर साहब !"

वे बोले—"देवी जी, घबराओ नहीं। हमें प्रत्येक दशा में ईश्वर पर भरोसा रखना चाहिए। इस समय टैम्प्रेचर बहुत अधिक है। आज की रात बीत गई तो फिर हम लोग खतरे से दूर हो जाएँगे। दो घण्टे का समय बीत जाए तो बस ! एक दवा देता हूँ।"

काल का कलेवर ! मृत्यु की घनी छाया ! प्रेमलता की कंपित गोद में निश्चेष्ट हेमलता और हेमलता की गोद में विशप्त विश्व-वेदना का मूक विहास—महाक्षितिज की गोद में नीरव, निर्जन टंड्रा का निर्निस्पँद औदास्य फैला था।

शुभ लक्षण

० ० ० ० ० ०

लाल को मृत्यु को घाट पर देख गुप्ता को अभियोग का सारा भार अपने ऊपर ले लेना पड़ा। अब तब उन्होंने शायद अपनी पूरी जान न लड़ाई थी। परन्तु अब तो उन्हें किसी-न-किसी नतीजे पर पहुँचना ही था। उन्होंने चाहा कि लाल की मिसिल को काम में लावें। परन्तु साहब ने ऐसा होने नहीं दिया। अभी उन्होंने भी उसे नहीं देखा था।

× × ×

तीन-चार हफ्ते बाद आगरा के एक अस्पताल में आप एक ऐसी सूरत देख रहे हैं—एक नहीं दो—कि आपके आनन्द और आश्चर्य की सीमा नहीं।

सिविल सर्जन ने कहा—"हमारा ख्याल है कि आज ही इनको पूर्ण चेतना प्राप्त होगी। स्मृतियाँ अपने-अपने स्तर पर आ स्थायी हो रहीं हैं। एक घण्टे बाद आपका साक्षात्कार कराऊँगा। उस समय वे पूर्ववत हुए रहेंगे।"

"यहाँ आए कितने दिन हुए ?"

"चार महीने हो गए।"

"आपको कितना धन्यवाद दूँ। जिस सहृदयता से आपने चिकित्सा की, कोई कर नहीं सकता था।"

"लेकिन आपका नाम जैसा सुना था, वैसे ही आप हैं भी"—और कहा, "अच्छा, गार्डन अस्पताल में भी ऐसा ही केस है। उससे भी सम्भवतः आपके केस का घनिष्ठ सम्बन्ध हो।"

"सचमुच ? ओह आप ही के हाथों मुझे सारा पुरस्कार मिलना था।"

एक घण्टे बाद एक बड़ा ही सुखद मिलन हुआ। मिलने वाले पहले एक-दूसरे को पहचानते भी नहीं थे, परन्तु उनमें घनिष्ठ सम्बन्ध था। एक उन्माद

के महा अन्धकार से निकला था, दूसरा मृत्यु के भयावह घाट से आया था। गार्डन अस्पताल मे गए, तो वहाँ भी कुछ ऐसा ही मिलन हुआ।

× × ×

ये जो अस्पताल में इन अपरिचितों से मिल रहे थे, इस समय पूना में थे।

ये खुफिया इन्स्पेक्टर थे। करमल का नाम आप सुन चुके होगे। वह इस समय अपनी रुग्ण-शय्या पर था। ये ही खुफिया इन्स्पेक्टर और कुछ अन्य व्यक्ति उसके समीप बैठे थे।

करमल ने इन्स्पेक्टर से कहा—"आप आ गए, बड़ा अच्छा हुआ। मैं स्वयं आता आपके यहाँ, परन्तु तब तक अस्वस्थ हो गया। आप मेरे यहाँ आ गए तो मैं तो एक बार सहस्त्रों हृदय से, सहस्त्रों स्वर में आपको बधाई देने के अतिरिक्त और कुछ देने योग्य नहीं। परन्तु निकट भविष्य बहुत बड़ा पुरस्कार ले आपकी ओर बढ़ा रहा है। आप एकाध प्रश्न पूछ लीजिए तो मैं सब कुछ कह सुनाऊँ।"

"लाल कोठी का निर्माण आप ही ने किया हैं? उसकी छत में······?"

उसी के साथ वह छोटा मकान जो अपने लिए······?"

करमल बोला—"बस हो चुका सुनिए, "आप कोई भी मैजिस्ट्रेट बहुत शीघ्र बुला लें।"

एक ही घण्टे के भीतर एक मैजिस्ट्रेट साहब कार पर आ धमके।

इन्स्तेक्टर ने कहा—"आप तुरन्त इसका बयान ले लीजिए।"

"जी हाँ, लिखए मैं कहता हूँ।" करमल ने कहा।

बयान लिखकर करमल के हस्ताक्षर ले लिए गए।

"परन्तु मेरा न्याय आप लोग नहीं कर सकते। अब मुझे बड़े न्यायाधिकरण में जाना है, जहाँ डाक्टर बोस होंगे।" यों कहते-कहते करमल ने दम तोड़ दिया।

× × ×

वहाँ से लौटकर इन्स्पेक्टर कप्तान साहब से उनके बँगले पर कुछ देर तक बाते करते रहे। इसके दो घण्टे बाद एक पुलिस दल जिसमें साहब, इन्स्पेक्टर गुप्ता, मिस मोरियो और कुछ कांस्टेबल थे, तुरीयानन्द के स्थान पर पहुँचा।

लोग प्रसन्न थे, परन्तु विस्मित भी कुछ कम न थे। सशस्त्र पुलिस का एक जत्था इसके कुछ पूर्व ही वहाँ रवाना हो चुका था, जिसे वहीं कहीं पास ही रुके रहने का आदेश था।

ये इन्स्पेक्टर जो करमल के यहाँ गए थे। इन्हें तो आप पहचानते ही होंगे—मि० लाल, कुंवर वीरेन्द्र लाल ! मृत्यु के घाट से वे लौट आए थे। अब वे पूरे स्वस्थ थे।

स्वामी जी, अब आप हम लोगों की सहायता कीजिए, यों कहते हुए लाल ने इनका हाथ पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया और उसमें तुरन्त हथकड़ी डाल दी। लोग विस्मित हो गए।

गुप्ता ने कहा—"यह क्या लाल ?"

"आप लोग जो कुछ देख रहे हैं, देखते चलिए। पीछे मालूम होगा यह सब क्या है।" लाल बोले।

फिर उन्होंने दूसरी हथकड़ी गुप्ता के हाथ में डालते हुए कहा—"मोरियो के हाथ में भी हथकड़ी डाल दो।" साहब बोले—"लाल ?"

"जी हाँ, मैं जो कुछ कर रहा रहा हूँ सोच समझकर।"

गुप्ता की ओर देखकर कहा—"आप चिल्लाने की कोशिश न कीजिएगा। आप अपराधी हैं।"

"क्या मेरे पिस्तौल का निशाना होंगे आप ? बस दूर हो जाइए।" गुप्ता ने तैश में आकर कहा।

लाल ने कहा—"आपके लक्ष्य से मैं बच गया हूँ। आपके षड्यंत्र से मेरी रक्षा हो चुकी है। मेरे हाथों से छूटकर आप पिस्तौल पर हाथ रख लें, क्या ऐसा आप सोच सकते हैं ? सीधे-सीधे हथकड़ी पहन लीजिए।"

लाल ने उन्हें बलपूर्वक हथकड़ी पहना दी और उनका पिस्तौल छीन लिया। तुरीयानन्द, गुप्ता और मोरियो तीनों बाँध लिए गए।

एक जीर्ण पत्र (यह वही वारंट था जिसे लाल ने दफ्तर से ढूँढ़कर निकाला था।) निकाल कर तुरीयानन्द को दिखलाते हुए कहा—"यह आपके ही नाम का वारंट है। आप ही उस्मान हैं कहिए, हैं न ? ये दो तीन निशान जो आप ने अपने चेहरे पर बना लिए हैं, वे अपने को छिपाने के लिए। स्वामी के

वेश में आप ने अपने को अच्छा छिपा रक्खा था।"

साहब ने बोले—"यही उस्मान खाँ खूनी है। हम लोग खतरे में पड़े हैं। तुरीयानन्द का यह गुप्त गृह है। यह विचित्र वैज्ञानिक ढंग से बना हुआ है, जिसे कुछ पुरानी भाषा में तिलिस्म कहना चाहिए।"

फिर तुरीयानन्द से कहा—"देखो उस्मान, इस तिलिस्म का रहस्य दिखला दो, तो तुम्हें दण्ड कुछ हल्का मिलेगा और तुम्हारे डाकू जो यहाँ इस तिलस्मी गढ़ी में रहकर सुरक्षित रहा करते हैं, वे भी पकड़ लिए गए होंगे। सशस्त्र पुलिस ने इस मकान को घेर लिया है। तुम्हारे डाकू भीतर-ही भीतर नदी से निकलते होंगे तो उस महाजाल में अवश्य ही फँस जायँगे, जो पुलिस ने वहाँ फैला रक्खा है। वे छिपे ही रहना चाहेंगे, तो मकान जलाकर, तोड़कर उन्हें पकड़ लिया जायगा।"

उस्मान का बचा-बचाया होश भी उड़ गया। परन्तु उसने अपने को सँभाला। उसने कुछ भी न कहा।

उस्मान के बहुत से शिष्य-जाल में पकड़ लिए गए। कुछ छिपे भी रहे हों सम्भवतः। वहाँ सशस्त्र पुलिस का बड़ा-सा पहरा रक्खा गया और गुप्त-गृह का रहस्योद्घाटन वैज्ञानिकों तथा इंजीनियरोंके लिए स्थगित रक्खा गया।

लाल ने साहब से कहा—"उस्मान ने उस साम्प्रदायिक बलवे में एक दो नहीं सात खून किए थे।"

आपके सामने तीन अभियुक्त हो गए। लेकिन वह देखिए मृत्युंजय लाल भी दो सिपाहियों और दो बुद्धुओं के बीच काँपते, हाँफते चले आ रहे हैं। अब चार हो गए। हो गए न, चाहे किस भी अभियोग के हों, हैं ये अभियुक्त ही।

रहस्योद्घाटन

०००००००००००

जिला मजिस्ट्रेट, कप्तान, इंस्पेक्टर एवं अन्यान्य कर्मचारी सब मंत्र-मुग्ध से बैठे लाल की ओर देख रहे हैं। मानो वे जादूगर हैं। अभियुक्त पास ही हवालात में बन्द हैं। वे अभियुक्त भी एक दूसरे को कम विस्मय से नहीं देख रहे थे। रह-रह कर सभी आँखें गुप्ता को ही देखने लगतीं।

लाल ने भानुमती की पिटारी यानी अपनी जांच की फाइल खोली और कहने लगे—

लाल कोठी में जो डाक्टर बोस की हत्या हुई, वह बहुत रहस्यपूर्ण है। उनका हत्यारा अब यहाँ की अदालत में अभियुक्त के कठडारे में अपना बयान देने तथा निर्णय सुनने के लिए न रहा। अब उसका और डाक्टर बोस का न्याय बड़े न्यायाधिकरण में होता होगा।

डाक्टर बोस की हत्या करने वाला इस लाल कोठी का निर्माता करमल नाम का एक पूना का निवासी था।

हरे बल्ब फट जाने से मुझे सन्देह हुआ कि हो न हो इसमें कोई रहस्य अवश्य है। उसे निकट से देखा। उसके भीतर छत में सूराख भी हैं। ऐसे ही सभी बल्बों के भीतर छत में सूराख हैं। जब मुझे हत्या का कोई दूसरा कारण न मिला, तो मेरा सन्देह उत्तरोत्तर दृढ़ होने लगा। मैंने निश्चय कर लिया इसी बल्ब से छत के भीतर से गोली छूट कर डाक्टर को लगी है। आगे सुनिए—

मैंने पूना में जाकर करमल को पाया। उसके विषय में बोस के नौकर निद्धू से बहुत कुछ जान लिया था। वह अदालत में बयान देगा। करमल ने अपना यह बयान मैजिस्ट्रेट के सामने दे और अपने हस्ताक्षर कर दम तोड़ दिया।

मैं पहले एक धनी व्यक्ति था। मेरे बहुत-से कारखाने थे। मैं बीमार था। डाक्टर बोस से मेरी पटती रही। मेरे घर के वे डाक्टर भी थे। वे ही चिकित्सा कर रहे थे। दो ही दिन बाद मेरी स्त्री भी अस्वस्थ हो गई। वे हम दोनों की दवा करने लगे।

ओह! मनुष्य जैसा पतित कोई न होगा। उन्होंने मेरा सब कुछ ले लेना चाहा। एक रात न जाने किस कागज पर मेरे हस्ताक्षर ले लिए। मैं कब जानता था कि जाल बनाया जा रहा है। वह नीच डाक्टर आता तो हम दोनों के सिवा कोई नौकर-चाकर भीतर न रहने पाता।

मैं बच गया और मेरी स्त्री भी। परन्तु अच्छा होने पर देखा तो मेरी आलमारी से सब कुछ नकद गायब था। फिर भी मैं डाक्टर पर सन्देह नहीं कर पाता था।

एक दिन जब मैं नहीं था, डाक्टर मेरे घर में आया था। मेरी स्त्री के साथ दुष्कर्म करना चाहा। वह तैयार न हुई, तो उसने उस पर फायर कर दिया। उसी समय मैं पहुँच गया। मुझसे कुछ करते न बना। मैं डर गया। वह बाहर हो गया। झट पुलिस आई, मुझे पकड़ लिया। शायद उसने पुलिस को मिला लिया था।

जाँच होने लगी। मैंने समझ लिया, यहाँ सत्य से मेरी रक्षा न होगी। मैंने भी पुलिस की पूजा की। उसने मुझे और बोस दोनों को बचा दिया। मृत को ही अपनी हत्या का अपराधी स्थिर किया—हत्या का केस आत्महत्या में बदल गया।

फिर मुझ पर दीवानी में रुपयों का दावा हुआ। यह उसी कागज के आधार पर हुआ जिस पर मेरे हस्ताक्षर लिये गये थे। मैं बहुत लड़ा, परन्तु डाक्टर की डिग्री होकर ही रही—सच पर झूठ की विजय होकर रही। मेरा सब कुछ जाता रहा। जब मैं मुकदमें में फंसा था, तो मेरे कारखाने के नौकरों ने भी खूब मनमानी की। मैं भिखारी हो गया।

प्रतिशोध की ज्वाला मेरे भीतर धधक रही थी। परन्तु मुझ में वह साहस न था कि डाक्टर को अपने पिस्तौल का निशाना बना पूरा बदला चुका लेता। फिर मैं जीवन के विषम क्षेत्र में भटकने लगा। कारीगरों के साथ काम करके

पेट पालता । कुछ दिनों में मैं बहुत अच्छा कारीगर हो गया था ।

डाक्टर की लाल कोठी बनने को आई । कई भाई, जो बाहर से आए थे और मेरे विषय में कुछ न जानते थे, सब काम कर रहे थे । मुझे अब कोई सहज ही पहचान भी नहीं सकता था ।

लाल कोठी को मैंने विचित्रता के साथ बनाया । उसकी छत में मैंने बहुत से भरे-भराए पिस्तौल बन्द किए और उनके मुँह पर बल्ब लगा दिए ! शयनागार के योग्य वही बल्ब वाला कमरा था । उसमें सोने वाला सम्भवतः हरे बल्ब के नीचे ही अपना पलँग रखता । और बल्ब जिनके ऊपर पिस्तौल हैं, उनमें हल्का हरा-सा निशान मिलेगा ।

उनके घोड़े खींचने के लिए सूत की रस्सियाँ दीवार के भीतर-ही-भीतर होकर उस छोटे-से मकान में जाती हैं, जिसे मैंने ही इस प्रकार कोठी के साथ-साथ बनाया था । उसमें कभी किरायेदार रहते कभी मैं रहता । निद्धू से मैं मेल रखता और घर की खबर लिया करता । मेरी कोठरी की आलमारी में वे रस्सियाँ हैं, जो मेरे ही खींचने से घोड़े को दबा सकती हैं, क्योंकि आलमारी के ऊपर उनमें गाँठें है और बिना उन्हें खोले खींचने से वे आकर आलमारी में अड़ जाती है । मैंने निद्धू के यहां से लौटकर बारह बजे रात को अपनी कोठरी में बैठ रस्सी खींच दी । फायर हुआ और बोस मर गया ।

मुझे केवल डाक्टर से बदला चुकाना था, यद्यपि यह मृत्यु उनके सभी दुष्कर्मों का प्रतिशोध करने को पर्याप्त नहीं । उनकी स्त्री तथा पुत्री का उनके दुष्कृत्यों से कोई सम्बन्ध न था, न उनसे मेरा कोई बैर है । उन्हें मैं सदैव सुखी चाहता हूँ ।

लाल ने कहा अब पीली कोठी की घटना सुनिए—

कुँवर अजीतसिंह के मित्र दिवाकर जी थे । गुप्ता जी दिवाकर जी के शत्रु हैं । इन्होंने उनके ऊपर कितने ही षड्यंत्र रचे, लेकिन वे बचे रहे । ये उनके प्राणों के भूखे थे । दिवाकर जी के घर जाकर मैंने सब पता लगाया । रलमल नाम का एक खिलाड़ी भी एकाध-बार कुँवर साहब के घर आकर खेल दिखा गया था । उसे कुँवर साहब ने कुछ आपने लिबास और रुपए इनाम दिए थे । कुँवर साहब और दिवाकर के रंगरूप में घनिष्ट सादृश्य था । रलमल भी दूर से कुछ उनके ही ऐसा लगता था । रलमल पागल हो गया था । घूमता-फिरता

वह यहाँ आ गया। गुप्ता जी जो दिवाकर जी के प्राणों की ताक लगाए रहते रतल को ही दिवाकर जी समझ कर फायर कर दिया। गुप्ता जी कुँवर साहब के यहाँ आते-जाते रहे। कुँवर साहब और दिवाकर जी अभी इस संसार में हैं उन्हें मैं उपस्थित करूँगा। जब यहाँ फायर हुआ कुँवर साहब टहलते हुए ट्रैक पर दूर निकल गए थे। किसी कार का धक्का लगा और वे गिर पड़े कार भागी। उनके दिमाग में ऐसा आघात पहुँचा कि वे पागल हो गए। फिर जाने कहाँ से और कैसे आगरा अस्पताल में पहुँचे। वहाँ उनकी चिकित्सा हुई। विज्ञप्ति से उनका पता चला। मैं वहाँ से उनको लाया। दिवाकर जी को भी उन्माद हो गया था। किसी ने उन्हें भंग पिलादी थी। वे भी आगरा अस्पताल में थे। वे अपनी कहानी सुनाएँगे।

गुप्ता की गाथा बहुत बड़ी है। ये तुरीयानन्द के दल में हैं। काले नकाबपोशों में ये भी हैं। उसी वेश में इन्होंने रतमल की हत्या की। उनके काले जूते की पहचान एक लड़का करेगा। उस दिन गुप्ता जी जहाँ जाने को थे, वहाँ गए नहीं थे। मेरा एक गुप्तचर (बुद्धू) स्त्री का वेश बना तुरीयानन्द-गुप्ता-संवाद भी सुन आया है। वह अपना बयान देगा। लाल और पीली कोठियों पर जो काले नकाबपोशों ने डाका डाला और हेम को चुरा लिया, उसके लीडर गुप्ता ही थे। तुरीयानन्द की गुप्तगढ़ी में उन नकाबपोशों का गायब हो जाना मैं कह ही चुका हूँ।"

लोग गुप्ता की ओर देखने लगे। वे भूमि में गड़े जा रहे थे। लाल फिर बोले—

"हरी कोठी में जो मि० जान की हत्या हुई। वह मोरियो के ही हाथों हुई। मि० जान और मोरियो में प्रणय चल रहा था। जान तो मोरियो को चाहते थे, परन्तु मोरियो जान को ही नहीं, शायद बहुतों को चाहती थी। हाँ, जान की सम्पत्ति को वह अवश्य जी से अपनाना चाहती थी। इसी निमित्त उन्होंने जाली कागज मृत्युंजय लाल से बनवा लिया, जान और मोरियो क्लब जाया करते थे। घटना की रात, क्लब में ही, जब बिजली बुझ गई, मोरियो ने अपनी विषैली हेयर पिन उनके कण्ठ में चुभा दी, जिसे वे किसी विषैले कीट का डंक सिद्ध करने की चेष्टा करती रही है। उसी के प्रभाव से वे घर आ मर गए। बहुत सम्भव है कि वह विष वही था जो डाक्टर सिनहा

ने उन्हें उनके फोड़े पर लगाने के लिए दिया था। वहाँ इनकी चिकित्सा होती रही।

मिस मोरियो का यह छोटा-सा, पतला-सा शस्त्र जो बालों के में पड़ा रहता है, अपनी नीरव सफलता में तलवार और पिस्तौल को भी मात कर देता है। जब सुई जान के गले में चुभी तो वे चीख उठे थे। क्लब के सदस्य इसे जानते हैं। विष से ही उनकी मृत्यु हुई, यह तो मेडिकल परीक्षा परीक्षा से प्रमाणित ही है।

मैं एक डांस-पार्टी को अपने यहाँ निमन्त्रित कर मोरियो के हेयर-पिन का रहस्य देख चुका हूँ। मेरे एक गुप्तचर को सुई चुभाई गई थी। उसने चुभाने वाले के पाकेट से वह रूमाल भी निकाला जो जानकर उसमें डाल दिया गया था। मैं और डाक्टर सिनहा छिपे हुए थे। उन्होंने मेरे बुद्धू को अच्छा किया।

ये जो दोनों या संभवतः तीनों हत्याएँ साथ-साथ हुईं, दैव संयोग से ही साथ-साथ हुईं। इससे जो यह अनुमान होता कि तीनों एक दूसरे से और एक संचालक के द्वारा संगठित हुईं, इससे सुराग के काम में असाधारण व्यवधान एवं संदिग्धता उत्पन्न हुई।

न जाने कितनी लम्बी साँसें एक साथ निकल पड़ीं, साथ-ही सबकी मंत्र-मुग्धता दूर हो गई। वाह वाह के नारे लग गए। साहब ने लाल का मुख चूम लिया और बोले—"वाह रे मेरे लाल! तुम्हारी इस अप्रतिम प्रतिभा पर बार-बार बधाई है।"

छत खोद कर पिस्तौल निकाले गए। ऊषा की लाली-सी, वसन्त की लाली-सी, लाल की लाली भी फैल गई।

पुरस्कार

पीली कोठी में एक भद्र मण्डली एकत्र थी—लाल साहब और दिवाकर की माताएँ, श्रीमती बोस, बिन्दो, बिहारी और प्रेमलता। हेमलता नहीं थी। वह कई सप्ताह पूर्व अपने घर चली गई थी।

लाल साहब आए, और सब को अभिवादन कर प्रेमलता की ओर उन्मुख हो कर बोले—"देवी जी, आज का दिन धन्य है! आइए यहाँ।"

सब लोग पास वाले कमरे में गए, देखा दिवाकर जी और सजल लोचन कुँवर अजीतसिंह खड़े हैं। प्रेमलता के सामने मानो स्वप्न में साक्षात स्वर्ग उतर आया हो। मन्त्र-मुग्ध-सी वह प्रिय के चरणों पर झुकी। कुँवर साहब ने उस को हृदय से लगा लिया। सब लोग देर तक मिलते रहे। लाल साहब ने उन्हें सारी कहानी कह सुनाई।

कुछ देर बाद लाल साहब हेम के कमरे में गए। देखा एक कार्ड रक्खा था। उसे पढ़ते ही उनका रंग बदल गया। वह पत्र हेम के घर से आया था। उसमें लिखा था—"हेम का विवाह शीघ्र होगा। निमन्त्रण आने पर अवश्य आना।"

हेम का विवाह! ओह! लाल तुरन्त वहाँ से निकल मण्डली में आए। उन्हें लोगों ने उदास देखा। अभी जो फूल खिला था, झुलसा और झकोरा हुआ सा हो गया।

प्रेमलता ने पूछा—"क्या है लाल साहब।"

वे अनमनाकर से बोले—"कुछ नहीं। अब शायद मैं आप से मिल न सकूँ। मैंने जिसे सब कुछ दे दिया था, उससे ऐसी प्रवंचना और आप के रहते हुए।"

जो कुछ हो मैं जिसे प्रेम करता था, उसे ही करता रहूँगा। अब लाल

बेहाल रहेगा, रहे। वह अब तक किसी का प्रेम लिये जी रहा था, अब उसकी केवल स्मृति लिये जीता रहेगा। वह अपनी आशाओं का उपवन उजाड़ देगा।

लोग म्लान होगए। प्रेमलता समझ गई। लाल साहब जाने लगे। उन्होंने उन्हें पकड़ लिया और कहा—"लाल साहब कहाँ जाते हैं। कुछ कहिए भी तो। मैं आपको कोई सौगात भी न दे सकी। आपने मेरा सुहाग, मेरा जीवन, मेरा प्रेम, मेरी निष्ठा मुझे दी है, जिसकी मुझे स्वप्न में भी आशा नहीं थी।"

लाल साहब ने कहा—"मैंने केवल अपना कर्तव्य पूरा किया। में केवल आपकी कृपा चाहता हूँ। और मैं क्या कहूँ?" यों कह वह पत्र उनके हाथों में दे दिया।

हेम जो अभी-अभी घर से लौटी थी, दूसरे कमरे में सब कुछ सुन रही थी। वह प्रेमलता के संकेत से धीरे से, आकर उनके पीछे खड़ी हो गई। बड़ी कठिनाई थी, इधर कुँवर अजीतसिंह से मिलने की विह्वलता उधर यह अभिनय करना।

प्रेमलता ने हेम का हाथ उनके हाथ में रख कर कहा—"अच्छा मेरी यह सौगात ले लीजिए, फिर जहाँ चाहे जायँ। भला मैं अपने छोटे जीजा और देवर को रूठने दूँगी।"

लाल साहब विस्मित होगए, लज्जा और आह्लाद की मधुमयी सुस्मिति में वे फिर सराबोर हो उठे।

कुँवर अजीतसिंह ने लाल को हृदय से लगा कर कहा—"मेरे लाल तुम रूठ जाते, तो हम लोग कैसे रहते भला।"

हेम ने कुँवर अजीतसिंह को अभिनन्दन किया। उन्होंने आशीर्वाद और बधाई दी फिर वह सब से मिली।

अच्छा अब इस समस्त मण्डली को चन्दो, चन्द्रभूषण और ज्योति ज्योतिर्भूषण के साथ देखिए। कैसे सरस हास-परिहास और उल्लास-लास में रात बीत रही है।

नौ बजे रात को हेम फाटक के बाहर आई। लाल खड़े थे। उसने कहा—"क्यों, क्या संकेत किया था? यहाँ खड़े हो। हमसे तुम्हें मतलब।"

लाल ने मुस्कराकर कहा—"रानी तुम्हारे ही लिए बैरागी हो रहा था। बिना एक बार एकान्त में मिले रहा न गया। हाँ यह तो बताओ, वह चिट्ठी···?"

"वह चिट्ठी क्या है पीछे बताऊँगी। उसके पीछे क्यों पड़े हो?" हेम बोली।

लाल ने कहा—"कब बताओगी रानी, सुहाग रात को?"

"धत्! " मुस्कुराकर कुछ मुड़कर हेम ने कहा।

लाल ने उसे अपनी बाहुओं में भर लिया। बाम कपोल उसकी काली कुंचित अलकों पर आश्रित कर दाहिने हाथ से उसके कपोलों को सहलाने लगे। कुछ देर में हेम ने अपनी स्नेह स्निग्ध, प्रेममुग्ध आँखें लाल की आँखों में डालकर कहा—"अब छोड़ दो।"

अब बिन्दो और बिहारी के विवाह के बाद उनके चाचा और चाची को—कुँवर बीरेन्द्र लाल और हेम को विवाह मण्डप में देखिए, जहाँ मैजिस्ट्रेट, प्तान एवं अन्यान्य कर्मचारी भी विद्यमान हैं।

सारा मण्डप भावी दम्पति की सौंदर्य्याभा से जगमगा रहा है। एक बार खिए कुँवर बीरेन्द्र लाल को—केसरिया वेश में तलवार के साथ मेवाड़ी वेश। ऐसा पुरुष सौंदर्य्य, ऐसा रूप सौष्ठव कभी देखा है?

अब देखिए इधर। ओजमयी चपला, आभामयी ऊषा, रंगमयी इन्द्र धनुषी, मुग्धमयी शरद-कौमुदी, विभामयी विकसित वसन्त वन विभूति क्षीर सागर में नहा ले, तो कैसी अभिराम शोभा होगी?

खंजन, मृग, पलास, मीन आदि अपनी दृगता मिला लें तो कैसी दृगता होगी?

करुण, शौर्य, मृदुता, कर्तव्य परायणता, प्रेम—ये सब एक में घोल दिए जायँ तो कौन-सा रस बनेगा?

के काली-काली घटाओं के पक्के-रंग में रंगे हुए रेशम के कुंचित धागे जिन अलकों को देखकर लजा जायँ, वे अलकें कैसी होंगी?

विकच पाटल, अरुण रसाल किसलय, नवनील की स्निग्धता जिस स्निग्धता के आगे रुक्ष लगे, वह स्निग्धता कैसी होगी?

देखिए हेम को, दूल्हन हेम को—सहस्त्र पावन लोचनों से देखिए। जरी की साड़ी को भेद कर दमकने वाली रूप-विभा को देखिए—

कुंचित काली अलकें देखिए। विकच-वारिज विमल-विलोचन देखिए, बाहु बल्लियाँ देखिए, नैसर्गिक शालीनता देखिए, ललकित, झलकित, पुलकित लोचन लास देखिए।

लाल ने कर-कमलों से रूपमयी के शीश में सुहाग की रेखा अंकित कर दी वे जब सब काम समाप्त हो चुका तो साहब ने कहा "मेरे मिस्टर लाल को जो पुरस्कार और उत्कर्ष मिले हैं, उन्हें यहाँ सुनाकर मैं आप लोगों के आनन्द को और अधिक से देना चाहता हूँ।

राष्ट्र के भिन्न-भिन्न विभाग लाल को अपने-अपने संचालक बनाना चाहते हैं—पुलिस विभाग अपने सी० आई० डी० का सर्वोच्च पदाधिकारी, सेना विभाग अपना प्रधान सेनानायक एवं परिषद अपना प्रधान मन्त्री बनाना चाहती है। ये आग्रह-पत्र हैं। यों तो सदैव ही, किन्तु विशेषत: शताब्दियों बाद आज के स्वन्तत्र भारत में ऐसे ही कर्मठ कर्मचारियों की आवश्यकता है।

आज हम स्वतंत्र भारत में हैं, यों कह एक बार और बधाई दे लें। मण्डप फिर मंगल-ध्वनि से गूंज उठा! पुष्पों की वर्षा होने लगी।



Salim Buksh

मुद्रक : शुक्ला प्रिंटिंग एजन्सी द्वारा, हीरो प्रेस, दिल्ली—६